दो कदम
विस्मरण से स्मरण की ओर

लेखक

वर्धमान तपोनिधि सघहितचिन्तक स्व गच्छाधिपति पूज्यपाद आचार्य
भगवत श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज के शिष्यरत्न
साधुसेवातत्पर, स्वाध्यायप्रेमी स्व पूज्यपाद मुनिराज
श्री देवसुन्दरविजयजी महाराज के शिष्यरत्न पूज्यपाद
आचार्य भगवत श्रीमद् विजय रत्नसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज

११०

प्राप्तिस्थान

१. रत्नत्रयी ट्रस्ट
प्रवीणकुमार दोशी
२५८, गांधी गली, स्वदेशी मार्केट,
कालबादेवी रोड
मुंबई - ४०० ००२
फोन : २०६०८२६
(दुपहर मे १२ से ७)

२. राजकुमार श्रीश्रीमाल
C/o राजदीप टेक्सटाइल एजन्सी
१५८, एम टी क्लोथ मार्केट,
कमेटी के सामने,
ईन्दोर - ४५२ ००१

3. Dharamchand Jinaykapa
11-28-1/13, Ganganama,
Temple street,
Vijayvada - 520 001.
Ph 566151

4. Jayantilal R. Rathod
K K Electricals,
21, Reddy Raman Street,
Chennai - 600 079. (T.N.)
Ph (R) 5244624 (O) 5385500

५. रत्नत्रयी ट्रस्ट
कल्पेश वि. शाह
C/o आर अशोककुमार एण्ड [illegible]
८६, अजन्ता कॉमर्शियल सेन्टर,
आश्रम रोड, इन्कम टेक्स के पास,
अहमदाबाद - ३८० ०१४
फोन ऑ ७५४०२९७
घर : ६७४५३५२

6. Ashok Sanghvi
C/o Hira Textiles
Ambica Cloth Market, 1st Floor
70, D K Lane, Chickpet,
Bangalore - 560 053.
Ph (O) 2261824

७. नरेन्द्रकुमार सुराना
सुराना पॅलेस
२४, जी. डी. सी. रोड, स्टेशन मार्ग
उज्जैन - ४५६ ००१ (M P)
फोन ५१३०४५, ५१८०४५

८. दिनेशभाइ भणसाली
म्यूजीक पेन मार्ट
६५, केनींग स्ट्रीट, १ ला माळा,
कलकत्ता - ७०० ००१
फोन [illegible]

मुद्रक
शार्प ऑफसेट प्रिन्टर्स
३१२, हीरा पन्ना कॉम्प्लेक्स
डॉ. यज्ञिक रोड, राजकोट - ३६० ००१
फोन ऑ : [illegible]
घर : [illegible], फेक्स : [illegible]
अमदावाद ऑफिस फोन : [illegible]

प्रथम आवृत्ति प्रति : २०००
द्वितीय आवृत्ति प्रति : २०००
तृतीय आवृत्ति प्रति : २०००
चतुर्थ आवृत्ति प्रति : ३०००
दिनांक [redacted]
मूल्य : ५०.००

उन सबको सद्‌बुद्धि मिले

दुष्प्रतिकारौ मातापितरौ ।

प्रशमरति प्रकरण मे पू उमास्वाति महाराज के इस कथन के सदर्भ का यत्किञ्चित् विस्तार अर्थात् इस पुस्तक का विषय ।

'माता-पिता दुष्प्रतिकार्य है ।'

'उनके उपकारो का बदला चुका पाना असभव है ।'

यह बात न जाने कितनी जगहो मे पढने मिली है, सुनने मिली है,

परन्तु सवेदनशीलता गँवा बैठे ह्रदयो पर इसका कोई असर नही । जवानी के उन्माद मे, पुण्य के जोर मे, शक्ति के नशे मे, बुद्धि के मद मे ये ह्रदय महा उपकारी माता-पिता के सामने भी मानो विरोध करने का ही 'मिशन' लेकर बैठे है ।

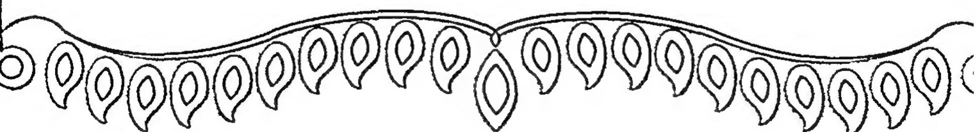
हालाँकि,

ऐसे निष्ठुर ह्रदयो की सख्या तो शायद बहुत कम होगी, परन्तु दूसरे ऐसे लाखो ह्रदय होगे, जिनके पास माता-पिता के अनन्त उपकारो को समझने जितनी प्रज्ञा विकसित नही हुई हो और इसके कारण अनजाने मे भी वे माता-पिता का अनादर-अवगणना आदि करते ही होगे ।

ऐसी सुयोग्य आत्माये अपने जीवन मे कृतज्ञता गुण की प्रतिष्ठा कर दे और माता-पिता के प्रति अपने गलत अभिगम मे सम्यक् परिवर्तन लाकर माता-पिता की समाधि मे व प्रसन्नता मे निमित्त बन जाये, इस शुभाशय से लिखी गयी इस पुस्तक मे जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ भी मुझसे लिखा गया हो, तो इसका मै त्रिविध-त्रिविध से मिच्छा मि दुक्कड मागता हूँ ।

द

आचार्य विजय रत्नसुन्दरसूरि



यह पुस्तक लिखने का मुझे मन क्यों हुआ ?

"महाराज साहिब ! आज तक आपने चाहे १०० से अधिक पुस्तकें लिखी हैं, पर आपने 'माता-पिता' पर एक भी पुस्तक नहीं लिखी ।

पुत्र जो कुछ भी करे, उसमें सम्मति ही दे देना, परन्तु जो [illegible], [illegible] पिलावे, वह पीना, जहाँ बिठावे, वहाँ बैठना, जो दिखावे, वह देखना, [illegible], [illegible] करने देना और उसे एक भी शब्द न कहना, उसे किसी भी प्रकार की [illegible] के बचे हुए दिन बस इसी तरह पूरे करते जाना ।

महाराजसाहिब ! यह स्थिति आज लाखों माँ-बापों की है । [illegible], मरते वक्त समाधि टिकी रहे, ऐसी कोई संभावना नहीं, जीने की चाह नहीं, फिर भी [illegible] पड़ता है, मरना है, फिर भी मौत उनसे दूर ही रहती है ।

आप एक पुस्तक 'माँ-बाप' पर लिखिये । [illegible] हुआ 'राम' जग जाए, पुत्रवधू के मन में बैठी हुई 'ममता' [illegible] कलेजे को उनके सद्वर्तन से ठंडक मिले ।"

बम्बई के एक [illegible] से करीब ८०-८५ वर्ष की [illegible] आँखों में से बहते हुए आँसुओं के साथ निकले [illegible] और इन्होंने से इस पुस्तक का सर्जन हुआ ।

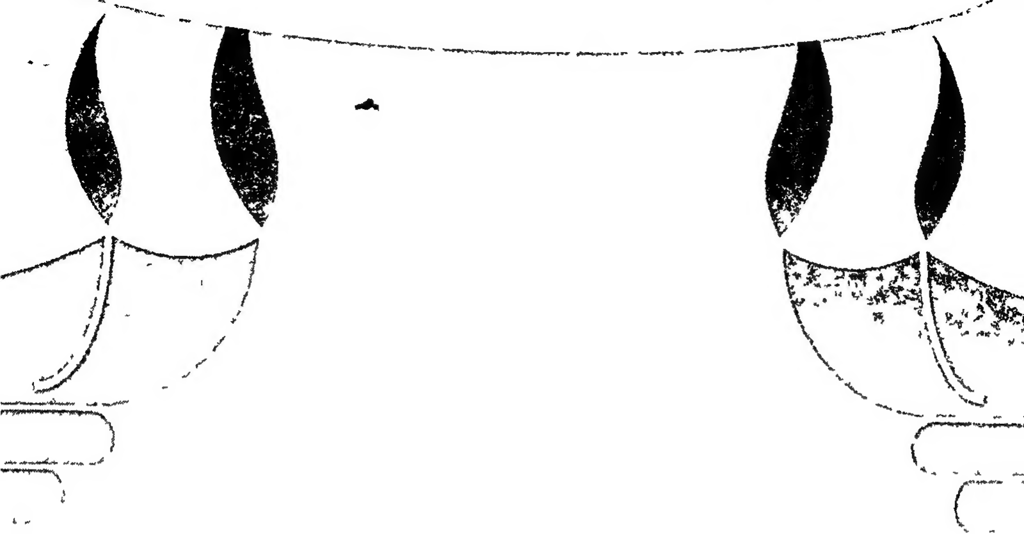
[illegible]

चतुर्थ आवृत्ति प्रकाशन के अवसर पर

परम पूज्य आचार्यदेव श्री रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा लिखित गुजराती पुस्तक **'लखी राखो आरसनी तक्ती पर'** की लोकप्रियता व मांग को नज़र में रखते हुए आज तक हम इसकी अस्सी हज़ार प्रतियाँ (ग्यारह आवृत्ति) प्रकाशित कर चुके हैं। सिर्फ जैन ही नहीं, हिन्दु, पारसी, मुस्लिम समाज में भी इस पुस्तक ने जबरदस्त जनप्रियता हासिल की है। पुस्तकवांचन के सुखद परिणामस्वरुप कई घरों में स्नेहमय वातावरण छा गया है। हिन्दीभाषी पाठकों की वारंवार मांग होने से हिन्दी भावानुवाद के रूप में 'दो कदम, विस्मरण से स्मरण की ओर' पुस्तक प्रकाशित की गयी। इस पुस्तक की चौथी आवृत्ति आपकी सेवा में पेश करते हुए हम आनन्द की अनुभूति करते है। इस पुस्तक के पठन द्वारा आप हृदय-परिवर्तन की दिशा पायें।

इसी शुभेच्छा के साथ..
लि.
रत्नत्रयी ट्रस्ट

यह पुस्तक लिखने का मुझे मन क्यों हुआ ?



"महाराज साहेब ! आज तक आपने चाहे १०० से अधिक पुस्तके लिखी है, परन्तु आपने 'माता-पिता' पर एक भी पुस्तक नही लिखी ।

पुत्र जो कुछ भी करे, उसमे सम्मति ही दे देनी, पुत्रवधू जो खिलाये, वह खाना, जो पिलाये, वह पीना, जहाँ बिठाये, वहाँ बैठना, जो दिखाये, वह देखना, पुत्र जो धधा करे, वह करने देना और उसे एक भी शब्द न कहना, उसे किसी भी प्रकार की सलाह न देनी, जिदगी के बचे हुए दिन बस इसी तरह पूरे करते जाना ।

महाराजसाहेब ! यह स्थिति आज लाखो माँ-बापो की है । उनके जीवन मे शान्ति नही, मरते वक्त समाधि टिकी रहे, ऐसी कोई सभावना नही, जीने की चाह नही, फिर भी उन्हे जीना पडता है, मरना है, फिर भी मौत उनसे दूर ही रहती है ।

आप एक पुस्तक 'माँ-बाप' पर लिखिये । शायद वह पढकर किसी पुत्र के मन मे बैठा हुआ 'राम' जग जाय, पुत्रवधू के मन मे बैठी हुई 'सीता' जग जाय और किसी माँ-वाप के कलेजे को उनके सद्वर्तन से ठडक मिले ।"

बबई के एक विस्तार मे करीब ८०-८२ वर्ष की वय मे पहुँचे हुए एक वृद्ध पिता की आँखो मे से बहते हुए आँसुओ के साथ निकले हुए शब्दो ने सचमुच मुझे हिलाकर रख दिया और उसीमे से इस पुस्तक का सर्जन हुआ ।

मै तो यही चाहूँगा कि पुत्र-पुत्रवधू को सन्मति मिले व माँ-वाप की समाधि टिकी रहे, इस उद्देश्य से लिखी गयी यह पुस्तक इसके उद्देश्य को पूर्ण करने मे शासनदेव की कृपा से सफलता पाये ।

द

आचार्य विजय रत्नसुन्दरसूरि

चतुर्थ आवृत्ति प्रकाशन के अवसर पर

परम पूज्य आचार्यदेव श्री रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा लिखित गुजराती पुस्तक **'लखी राखो आरसनी तक्ती पर'** की लोकप्रियता व मांग को नज़र में रखते हुए आज तक हम इसकी अस्सी हज़ार प्रतियाँ (ग्यारह आवृत्ति) प्रकाशित कर चुके हैं। सिर्फ जैन ही नहीं, हिन्दु, पारसी, मुस्लिम समाज में भी इस पुस्तक ने जबरदस्त जनप्रियता हासिल की है। पुस्तकवांचन के सुखद परिणामस्वरूप कई घरों में स्नेहमय वातावरण छा गया है। हिन्दीभाषी पाठकों की वारंवार मांग होने से हिन्दी भावानुवाद के रूप में 'दो कदम, विस्मरण से स्मरण की ओर' पुस्तक प्रकाशित की गयी। इस पुस्तक की चौथी आवृत्ति आपकी सेवा में पेश करते हुए हम आनन्द की अनुभूति करते है। इस पुस्तक के पठन द्वारा आप हृदय-परिवर्तन की दिशा पायें।

इसी शुभेच्छा के साथ..

लि.

रत्नत्रयी ट्रस्ट

हिन्दीभाषी वाचकों के लिये खुशखबर

न्यायविशारद, वर्धमान तपोनिधि परम पूज्य आचार्यदेवश्री **भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.** के प्रशिष्य सरस्वतीलब्धप्रसाद, सुविख्यात प्रवचनकार परम पूज्य आचार्यदेव **श्री रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा.** ने प्रवचन व लेखनी के माध्यम से भौतिकता की चकाचौंध मे गुमराह बने हजारो लोगो को आदर्श जीवन जीने की राह बतायी है । रत्नत्रयी ट्रस्ट ने पूज्यश्री द्वारा लिखित **१२६ पुस्तकें** गुजराती भाषा में प्रकाशित की है । नैतिकता, आचार-सपन्नता, जीवन शुद्धि, हृदय की उदारता, प्रेम के पथ पर ले जानेवाले उनके साहित्य से समाज बहुत लाभान्वित हुआ है ।

पूज्यश्री की
लेखनी व प्रवचनों की ताकत से बबई, सूरत, अहमदाबाद आदि क्षेत्रो की जनता तो परिचित है ही । हिन्दीभाषी पाठक भी पूज्यश्री की इस ज्ञान-समृद्धिसे लाभान्वित हो, इस हेतु से रत्नत्रयी ट्रस्ट ने हिन्दी भाषा में भी पूज्यश्री का साहित्य प्रकाशित करने की योजना बनायी है । पूज्यश्री की तीन पुस्तको का हिन्दी मे अनुवाद प्रकाशित हो चूका है । अब अन्य पुस्तकें भी हिन्दी भाषा में प्रकाशित होगी । एक-एक पुस्तक भी आपके लिये एक अनमोल नजराना सिद्ध होगी । आप भी इस योजना का लाभ लेकर घर-बैठे पूज्यश्री की हिन्दी पुस्तके प्राप्त कर सकेंगे ।

योजना की रूपरेखा इस प्रकार है। रू. १०००/ भरकर इस योजना के सदस्य बन जाईये । प्रति वर्ष आपको ट्रष्ट की ओर से प्रकाशित पुस्तकें प्राप्त होंगी । यह योजना तीन साल के लिए है । आजीवन सदस्यता की योजना का विचार बाद में किया जाएगा ।

समर्पण



संयम-स्वाध्याय रसिक पूज्यपाद गुरुदेवश्री
देवसुंदरविजयजी महाराज

पूज्यपाद गुरुदेवश्री !

ढेर सारे प्रलोभनो को ठुकराते रहकर भी और अनेक प्रकार की पीडाओ को स्वीकारते रहकर भी आपने गृहस्थ-जीवन मे कुटुब के 'बुजुर्ग' के स्थान को सचमुच गौरव बख्शा और साधु-जीवन मे पापभीरुता को आत्मसात् करके, स्वाध्यायरसिकता को अस्थिमज्जा बनाकर, वैयावच्च गुण को प्राधान्य देकर सयमजीवन की प्राप्ति को सच मे सार्थक बनाया, यह तो ठीक, परन्तु पूज्य मातुश्री की अनुपस्थिति मे ससारी जीवन मे मुझमे सुसस्कारो का आधान करके आप मेरे लिए सही अर्थो मे कल्याणपिता बने और सयमजीवन मे दोषो के सेवन से मुझे बचाते रहकर आप मेरे लिये सही अर्थो मे अनन्तोपकारी गुरुदेव बने ।

मुझ पर आपके अनन्त-अनन्त उपकारो का बदला चुकाने का तो मुझमे कोई सामर्थ्य नही, परन्तु सम्यक् श्रद्धा, प्रचड सत्त्व और सुन्दर समर्पण के सहारे आप सयमजीवन की जिस विशुद्धि को चाहते थे, उस विशुद्धि के स्वामी बनने के मेरे पुरुषार्थ मे मै सतत आगे बढता ही रहूँ, तो मुझे ऐसा लगता है कि आपश्री के अनन्त उपकारो के ऋण मे से जरूर थोडा बहुत तो मुक्त बन ही सकूँगा ।

आपश्रीजी जहाँ हो, वहाँ से मुझ पर ऐसे आशिष बरसाईयेगा कि आपश्रीजी ने मेरे लिए जो इच्छा रखी, उसे सफल बनाने का सामर्थ्य मुझमे जरूर प्रगटकर ही रहे ।

अन्त मे, माता-पिता के अनन्त उपकारो की यशोगाथा का वर्णन करती हुई यह पुस्तक आपश्री के कर-कमलो मे सादर समर्पित करते हुए मै अत्यन्त आनन्द की अनुभूति करता हूँ ।

द

रत्नसुन्दरसूरि



सुश्राविका पूज्य मातुश्री चंपावहन दलीचंद दोशी

मातुश्री !

'लोकप्रकाश' नामक ग्रथ मे प्रत्येक सर्ग के अन्त मे पूज्यपाद उपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज ने अपनी पहचान 'पिता तेजपाल व माता राजश्री' के पुत्र के रूप मे भी दी है, यह जबसे पढा था, तबसे मेरे मन मे एक बात घूमा करती थी कि मै भी मेरी पहचान कब ऐसे ही किसी माध्यम से दूँगा ?

आज ऐसा एक अवसर हाथ मे आ गया है । इस पुस्तक के सपूर्ण विषय के केन्द्रस्थान मे माता-पिता के अनन्त उपकार की बाते है । आप तो मुझे पॉच वर्षकी उम्र मे इस दुनिया मे छोडकर परलोक की ओर प्रयाण कर गयी थी, परन्तु परिवारजनो व पडौसियो के द्वारा मैने सुना था कि आप सतत यही चाहती थी कि मेरा पुत्र सस्कारी बना रहे, धर्मी बना रहे ।

माँ ! आपके परलोकगमन के पश्चात् पिताजी ने आपकी यह इच्छा पूरी करने के लिए मानो सम्यक् पुरुषार्थ का यज्ञ ही शुरू कर दिया और इसीके फलस्वरूप आज मै जयकारी जिनशासन के सर्वोत्कृष्ट सयम जीवन को पा सका हूँ ।

जन्मदात्री, जीवनदात्री व सस्कारदात्री बनी हुई आपको मै दूसरा तो क्या वचन दूँ ? परन्तु इतना तो जरूर कहूँगा कि आपके द्वारा दिये गये सस्कार को सदा गौरव बख्शे, ऐसे पवित्र जीवन के लिये मै पुरुपार्थशील बना रहूँगा । आप जहाँ भी हो, वहाँ से मुझे ऐसे शुभाशिप दीजियेगा कि मुझे इसमे बल मिले ।

अन्त मे, माता-पिता के उपकारो की यशोगाथा का वर्णन करती हुई यह पुस्तक 'सुश्राविका' का गौरव पाये हुए आपको समर्पित करते हुए मै गद्गद् हो उठा हूँ ।

द

रत्नसुन्दरसूरि

महाराजसाहेब,

एक अति गभीर समस्या लेकर मैं आपके पास
आया हूँ ।
यदि इस समस्या का समाधान न हुआ, तो इसका कटु परिणाम
क्या आयेगा, इसकी कल्पना मैं स्वय भी नहीं कर सकता ।
परन्तु मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण श्रद्धा है कि
आपकी ओर से मिलनेवाला सम्यक् मार्गदर्शन इस
समस्या का समाधान कर ही देगा ।
मेरी समस्या यह है कि
मेरे मम्मी-पप्पा प्रौढावस्था को पार कर चुके हैं ।
मैं हूँ तीस वर्ष का,
तो मम्मी-पप्पा हैं पैंसठ-सित्तर के ।
छोटी छोटी बातों मे
पप्पा के साथ मेरा व
मम्मी के साथ मेरी पत्नी का मतभेद होता ही रहता है ।
मेरी बात समझ सके,
इतनी बुद्धि पप्पा मे नहीं है,
तो
मेरी पत्नी की बात समझ सके,
ऐसी तीक्ष्णता मम्मी के पास नहीं ।
बैलगाडी के युग मे मम्मी-पप्पा जन्मे हैं
और कम्प्युटर युग मे हम जन्मे है ।
हम जितनी दूर का देख सकते है,
व सोच सकते हैं,
उतनी दूर का मम्मी-पप्पा
देख भी नहीं सकते व सोच भी नहीं सकते ।
इसी कारण से घर मे सतत सघर्ष हुआ ही करते हैं ।
मुझे घर के बाहर चले जाने का मन होता है,
तो मेरी पत्नी बार-बार मायके जाने की धमकी दिया करती है ।

मैंने एक बार तो मम्मी-पप्पा से कह भी दिया कि
हमे हमारे तरीके से जीने दो
और आप अपने तरीके से जीयो ।
इस उम्र मे आपको चाहिए भी क्या ?
तीनो समय व्यवस्थित भोजन मिल जाय,
बैठने-उठने के लिये छोटा-सा कमरा मिल जाय,
पहनने के लिये स्वच्छ व सुघड वस्त्र मिल जाये,
बस इतना तो काफी है ।
मै आपकी यह सारी व्यवस्था कर देता हूँ,
फिर तो आप इस घर मे शान्ति से रहिये ।
हरएक मामले मे अभिप्राय देने की व
सलाह देने की आपको जो आदत पड गई है, उस पर
थोडा तो काबू रखिये ।
परन्तु व्यर्थ । उनके स्वभाव मे आशिक भी सुधारा नहीं दिखता ।
अब तो मुझे ऐसा लगता है कि या तो अब हमें
मम्मी-पप्पा से अलग हो जाना चाहिये
या फिर कडक शब्दो मे मम्मी-पप्पा को चुप रहने की
नोटिस दे देनी चाहिये ।
आखिर सहनशीलता की भी कोई हद तो होनी चाहिये न ?
हॉ, उनका पुत्र होने के नाते मैं शायद उनका ऐसा वेकार
स्वभाव निभा भी लूँ, परन्तु मेरी पत्नी, जिसकी कोई गलती
ही नहीं, वह मम्मी-पप्पा के
क्षुद्र स्वभाव को कब तक सहन करेगी ?
सच बताऊँ ?
शाम को ऑफिस से घर लौटने पर आनन्द होना
चाहिये, इसके बदले मुझे भार लगता है ।
आप ही बताईये, ऐसी परिस्थिति मे मुझे क्या करना चाहिये ?
साथ मे रहता हूँ, तो सघर्ष चालु रहता है
और शान्ति पानी हो, तो अलग होना अनिवार्य है ।

दर्शन,

तेरा पत्र पढा ।

एक बात तो स्पष्ट नजर आती है कि

तू बुद्धि के अभाव से व्यथित नहीं परंतु,

बुद्धि के दुरुपयोग से व्यथित है,

नहीं तो असीम उपकारी मम्मी-पप्पा के लिये तू

भला ऐसे शब्द लिख पाता ?

बैलगाडी के युग मे मम्मी-पप्पा जन्मे है,

तेरी यह बात सही है,

परन्तु ये ही मम्मी-पप्पा तेरे लिये जन्मदाता भी बने हैं

और जीवनदाता भी बने हैं, इस बात का तुझे विचार भी आता है ?

फिलहाल मम्मी-पप्पा मे शायद तेरी तुलना मे बुद्धि कम होगी

परन्तु

तू जन्मा, तब तुझमे बुद्धि थी ही नहीं, यह तो तू

जानता है न ? जन्म लेने के बाद शुरूआत के दिनो मे

तेरे सर पर कौआ बैठकर चोच से शायद तेरी ऑख फोड देता

तो उसे उडाने की अक्ल भी तुझमे नहीं थी

और ताकत भी नहीं थी, यह बात तो तू स्वीकारता है न ?

स्वय की तमाम अनुकूलताओ को

एक ओर रखकर मम्मी ने तेरे सुख की ही चिन्ता की है,

यह तो तुझे मालुम है न ?

अरे,

जन्म देने के बाद मम्मी ने जो ध्यान रखा, उसकी बात तो जाने दे ।

तू उसके गर्भ मे था, उस वक्त उसने जो कुर्बानी दी, उसे तू

सिर्फ याद कर ले । यदि तेरे शरीर मे कृतज्ञता का खून बहता

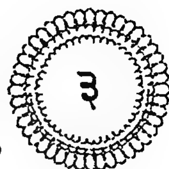
होगा, तो तेरी आखो मे से सावन-भादों बरसने लगेगे ।

मैं तुझे ही पूछता हूँ ।

तू सिर्फ एक छोटी-सी किताब हाथ मे रखकर नौ दिन भी

प्रसन्नतापूर्वक बिता सकता है ?

एक पल के लिए भी पुस्तक कहीं रखने की नहीं.
फिर भी प्रसन्नता सतत टिकाये रखना,
क्या यह तेरे लिये संभव है ? यदि नहीं
तो मैं तुझसे इतना ही कहूँगा कि नौ-नौ महीनों तक पेट मे
रखकर तेरी मम्मी ने तेरा भार उठाया है ।
उस वक्त उसे शायद मिर्च खाने का बहुत शौक था, फिर भी छोड दिया
सिर्फ तेरा स्वास्थ्य न बिगडे इस हेतु से ।
उसकी चाल तेज थी, वह भी
उसने बदल डाली,
तेरे स्वास्थ्य को नुकसान न पहुँचे, इसलिये ।
घूमने फिरने की वह बहुत शौकीन थी, फिर भी उसने इस पर
नियंत्रण रखा,
तेरी तदुरुस्ती न बिगडे, इसके लिये ।
नौ मास तक चौबीसो घटे सतत तेरा भार
पेट मे रखकर मम्मी घूमी है, इतना .
तू अब स्मृति पथ पर ला दे ।
दर्शन,
फिलहाल तो मैं तुझे इतना कहूँगा कि
गर्भावस्था के दौरान मम्मी द्वारा दी गई कुर्बानी को सम्यक्
अजलि देने के लिए भी तू
पत्नी से कह दे कि 'मम्मी को स्वभाव बदलने का कहने के बदले
मम्मी के इस स्वभाव को निभा लेने का सूचन तुझे करना
मुझे ज्यादा उचित लगता है ।'
बैलगाडी के युग मे मम्मी जन्मी थी इसीलिये तो उसने गर्भपात का निकृष्टतम
अपराध नहीं किया और
इसी बदौलत तो तू इस धरती पर के सूर्यप्रकाश के किरण को
छू पाया है । **कम्प्युटर युग की आज की जो नौ करोड**
मातायें प्रति वर्ष अपने बालक को पेट मे से ही परलोक मे
रवाना कर रही हैं, उन माताओं में यदि तेरी मम्मी भी
होती तो ?



दर्शन,

खूब गभीरता के साथ तूने मेरा पिछला पत्र पढा होगा ।
सुख की कल्पना मे खो जाना इन्सान को अच्छा लगता है,
परन्तु जिसने स्वयं पर सुख के उपकार किए है,
उन्हें स्मृतिपथ मे लाने के मामले मे वह लापरवाह है
और इसका ही यह परिणाम आया है कि
उसके जीवन मे
कृतज्ञता का स्थान कृतघ्नता ने ले लिया है ।
हृदय को एक ओर धकेलकर बुद्धि ने स्वय का स्थान मजबूत बना लिया है ।
समर्पण का स्थान स्वच्छन्दता ने ग्रहण कर लिया है ।
सरलता को एक ओर घसीटकर तर्क ने अपना एकछत्र
साम्राज्य जमा दिया है ।
मैं चाहता हूँ कि तू स्वय इन सब खतरनाक परिबलों मे से
जल्दी से जल्दी स्वय को उबार ले ।
और इसीलिये मै तेरे सामने
एक बार तेरे भूतकाल को पेश कर रहा हूँ । तुझे
इस बात का तो विश्वास हो गया न कि तेरे वर्तमान तमाम
सुखो का, स्वस्थता का, ख्याति का अथवा प्रसिद्धि का श्रेय
किसी एक ही परिबल को मिलता हो, तो वह परिबल है-
गर्भपात की राह न अपनानेवाली तेरी मम्मी द्वारा किया गया निर्णय ।
इसमे उसने थोडी सी भी ढील रखी होती, तो
तू आज मेरे समक्ष 'मम्मी का स्वभाव मेरी पत्नी को जमता
नहीं' ऐसी फरियाद करने के लिये उपस्थित न हो पाया होता ।
क्या बताऊँ तुझे ?
तेरे जैसे ही एक युवक ने पत्नी की बातों मे आकर
अपनी मम्मी को वृद्धाश्रम मे रखा । तीन-चार महीने के
बाद एक रात अचानक मम्मी की ऑख खुल गयी ।
अपने इकलौते पुत्र के सुख के लिये, उसने जो कुछ सहन किया
वह सब उसे याद आ गया ।

उसकी ऑखो मे से अश्रुधारा बहने लगी । वह सिसकियॉ भरकर रोने लगी । उसे चुप रखनेवाला कोई था नहीं, अत वह स्वय ही आधे घटे मे शान्त हो गयी ।

कमरे मे लाईट शुरू की, मुँह धोया, पलग पर बैठी और अचानक उसकी नजर सामने की दीवार पर लटकते हुए केलेन्डर पर पडी । उसकी ऑखो मे चमक आ गयी ।

ओह । आज से बराबर तीस वर्ष पूर्व इसी तारीख को व रात्रि के इसी समय मैने मेरे लाल को जन्म दिया था ।

वह अपनी भावनाओ को रोक नहीं पायी । क्योकि आखिर तो वह एक मॉ थी, वात्सल्य का महासागर थी ।

पलग से उठकर वह कमरे मे एक ओर रखे हुए टेलीफोन के पास गयी । डायल घुमाया, सामने से पुत्र ने फोन उठाया ।

'कौन ? '

'बेटे । मैं तेरी मम्मी ।'

'परन्तु इतनी देर रात फोन करने की तुझे क्या जरूरत थी ?'

'बेटे ! जरूरत तो कुछ नहीं थी । परन्तु तीस वर्ष पूर्व इसी तारीख को इसी समय मैंने तुझे जन्म दिया था । यह मुझे याद आ गया, इसीलिये शुभाशीष देने के लिये तुझे फोन किया था'

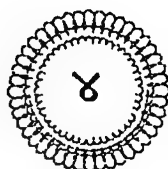
'यह शुभाशीष तो सुबह मे भी दी जा सकती थी, अभी रात को तीन बजे ऐसा नाटक करने की तुझे क्या जरूरत थी ?'

'बेटे ! मॉ के वात्सल्य को नाटक कहने का पाप मत कर । तेरे प्रति प्रेम होने से ही मैंने तुझे अभी फोन किया है ।'

'परन्तु तुझे पता है कि
अभी फोन करके तूने मेरी नींद
बिगाड दी है ?'

'बेटे ! मैंने तुझे अभी फोन किया, इससे तेरी नींद बिगडी है, यह बात सच है, परन्तु तीस वर्ष पूर्व मैंने तुझे जन्म दिया, तब मेरी तो सारी रात बिगडी थी, क्या यह तुझे याद भी है ?' इतना कहकर मम्मीने रोते - रोते फोन रख दिया ।

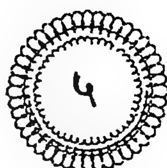
दर्शन,



वृद्धाश्रम की इस मम्मी की जगह तू तेरी मम्मी को रखकर देख।
तू कॉपे बिना नहीं रहेगा।
याद रखना,
प्रेम कभी भी अपने द्वारा किये गये उपकारो का हिसाब रखना
समझा ही नहीं है
और इसीलिये प्रेम पात्र व्यक्ति अपने पर किसके -किसके
व कैसे-कैसे उपकार हुए है अथवा तो हो रहे है,
यह नहीं समझ सकता।
मैं तुझे ही पूछता हूँ कि
है तेरे पास तेरे मम्मी-पप्पा द्वारा किये गये
उपकारों की समझ ?
नहीं, तेरे सामने तो है मम्मी-पप्पा के बिगडे हुए
स्वभाव का दर्शन
और इसी कारण से तो तू उनसे अलग हो जाने अथवा
उनके स्वभाव को सुधारने की नोटिस देने के निर्णय
पर आ गया है।
दर्शन, थोडा शान्त हो जा।
तेरे स्वय के ही जन्म के बाद के वर्षो पर नजर डाल।
मम्मी-पप्पा ने इन वर्षो मे तेरे लिये
जो कुछ किया, उसे नजर के सामने रखता जा।
तेरे निर्णय मे फेरफार किए बिना तू नहीं रह सकेगा।
चले, अब अपनी मूल बात पर आये।
मम्मी तेरे लिये जन्मदात्री तो बनी ही, परन्तु
जन्म देने के बाद जीवनदात्री भी बनी रही।
तेरे जीवन के लिए खतरे रूप बन सके, ऐसे तमाम
प्रकार के आहार से, वातावरण से, वस्तुओ से व व्यक्तिओं से
उसने तुझे दूर ही रखा।
तेरे पप्पा ने भी अच्छा योगदान दिया।

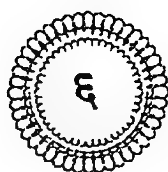
तेरे जीवन की व स्वास्थ्य की रक्षा के खातिर
उन्होने समय की कुर्बानी दी,
शक्ति की कुर्बानी दी व
संपत्ति की भी कुर्बानी दी ।
याद रखना,
बीज अंकुर बनकर बाहर आता है, बाद मे
माली की देखभाल के बिना उसका वृक्ष बनना
मुश्किल है, तो जन्म के बाद माँ-बाप की योग्य
परवरिश के बिना बालक का जीवन टिकना भी मुश्किल ही है ।
तू आज तीस वर्ष की उम्र तक पहुँच सका है,
इसमे जीवनदाता बने हुए तेरे मम्मी-पप्पा का बहुत बडा
योगदान है, यह तू जानता है न ?
बाल्यावस्था मे अबोध अवस्था मे गैस के चूल्हे को छूने जाते हुए तुझे
समय पर रोकने की सतर्कता मम्मी ने न रखी होती तो ?
नये दॉत निकलते वक्त तुझे दस्ते लगने पर
तेरे पप्पा ने समय पर दवाई न लायी होती तो ?
पाचवी मंजिल के बरामदे मे टेबल पर चढकर
झुककर नीचे देखने के लिये तैयार हुए तुझे उस वक्त
मम्मी-पप्पा, दोनों ने सजग होकर वहॉ से न उठाया होता तो ?
मम्मी की अगुली पकडकर रास्ते मे चलते हुए
अचानक सामने से तेज गति से आती हुई ट्रक को देखते ही
तुझे जल्दी से उठाकर मम्मी एक तरफ न हटी होती तो ?
कल्पना कर, ये और इनके जैसे अन्य प्रसगों की ।
तुझे प्रतीति होगी कि
यदि मम्मी-पप्पा ने सतत सर्तकता न बरती होती,
सावधानी न रखी होती, तो आज तेरे जीवन का अस्तित्व ही न होता ।
सक्षेप मे कहा जाय, तो मम्मी-पप्पा ने खून के रिश्ते मे वात्सल्य व
प्यार न रखा होता, तो तू जन्म लेने पर भी जीवन न टिका
पाया होता, इसमे कोई शका नहीं ।

दर्शन,



तू ऐसा मत मान बैठना कि जहाँ लहू के सम्बन्ध होते हैं,
वहाँ प्रेम होता ही है।
नहीं, तूने ऐसी साँपिन की बाते सुनी ही होंगी कि जो
अपने बच्चों को जन्म देकर तुरन्त ही मार डालती है।
तूने ऐसी कुतिया के बारे मे भी सुना ही होगा कि जो
अपने ही पिल्लों को जन्म देते ही खत्म कर देती है।
तूने ऐसी विलासिनी माताओं की बात भी सुनी ही होगी कि
जो अपने विलास व मौज-शौक को सलामत रखने के लिये
अपने पेट मे रहे हुए बच्चो को इस धरती पर आने देने से
पहले ही परलोक मे रवाना कर देती हैं।
तूने ऐसी क्रूर माताओं की बाते भी सुनी ही होंगी कि
जो बच्चे को जन्म देकर तुरन्त ही
गदगी के ढेर के पास रहे हुए कूडे-करकट के डिब्बे मे
डालकर रवाना हो जाती हैं।
सक्षेप मे कहा जाय, तो
ये सब दृष्टान्त यही कहते है कि
जहाँ लहू के सम्बन्ध होते है,
वहाँ प्रेम होता ही है, ऐसा नहीं है।
तू जन्म पाने के बाद जीवन टिका सका है, इसका यश
तेरे मम्मी-पप्पा के प्रेम को मिलता है।
वे तेरे लिये सदा प्रेम बरसाते रहे,
इसीलिये तो तू जीवन टिका पाया, नहीं तो तेरा जीवन टिक पाना
मुश्किल हो जाता।
एक दूसरी बात बताऊँ ?
तेरे जीवन मे आज ऐसे कोई गलत व्यसन या
गलत दूषण नहीं है,
इसका श्रेय भी तेरे मम्मी-पप्पा की निगरानी व
जागृति को ही मिलता है।

नादान, निर्दोष वय मे तेरा जीवन कुसस्कारों से दूषित
न हो जाय, इसके लिये
तेरे मम्मी-पप्पा ने तुझे गलत मित्रो से दूर रखा है ।
तुझे व्यसनो से बचाने के लिये
उन्होने तुझे ऐसे स्थानों मे जाने ही नहीं दिया ।
उन्होने न तुझे गाली-गलौज करने दिया
और न ही तुझे चोरी करने दी ।
किशोर वय मे तेरी पवित्रता को कोई दाग न लग जाय,
इसके लिये उन्होने तुझे न गंदे स्थानो मे जाने दिया,
न अश्लील फिल्मे देखने दी ।
हॉ, तेरी नासमझी की वय मे भी तेरे मम्मी-पप्पा
तुझे मंदिर लेकर जाते,
तुझे परमात्मा के दर्शन कराते,
तुझे गुरु भगवत के आशीर्वाद दिलाते,
पवित्र पुरुषों के जीवन के वर्णन तुझे सुनाते,
तीर्थयात्राये कराते, पाठशाला मे दाखिल कराते,
भडार मे तेरे हाथो पैसे भी डलवाते ।
सक्षेप मे, एक भी कुसस्कार तुझे न छू पाये
और कुसंस्कारो के ढेर तुझे विरासत मे न मिल जाये
इसके लिये मम्मी-पप्पा ने अपने से हो सके, उतने तमाम
प्रयत्न किये हैं । जन्म के बाद
तेरा जीवन टिक पाया है, इसमे तेरे मम्मी-पप्पा का तेरे प्रति
प्रेम ही काम कर गया है, तो
इस जीवन मे तू शैतान, लफंगा, बदमाश या गुंडा न बनकर
सदाचारी व सज्जन बना रह पाया है, इसमे मम्मी-पप्पा की
तेरे लिये ली गयी संभाल काम कर गयी है ।
मैं तुझसे इतना ही पूछना चाहता हूँ कि
क्या तेरे पास यह स्पष्ट, स्वच्छ व सत्य दर्शन है ?
क्या तेरे पास यह सम्यक् दर्शन कर सके, ऐसी निर्मल
दृष्टि है ?

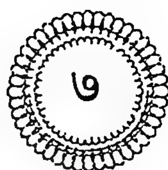


दर्शन,

तुझे शायद ऐसा लगता होगा कि
'मेरे एक ही पत्र के प्रत्युत्तर के रूप मे महाराज साहेब ने
चार-चार पत्र लिख दिये ।
इसके लिये न तो वे मुझे प्रत्यक्ष मे मिलने के लिये बुलाते है
और न ही मेरे दूसरे पत्र की राह देखते हैं ।
कम से कम मेरी परिस्थिति उन्हे व्यवस्थित रूप से
जाननी तो चाहिये न ?
मुझे भी बोलने का अवसर देना तो चाहिये न ?
मानों मम्मी-पप्पा एकदम निर्दोष हैं
और मैं अकेला ही गुनहगार हूँ ऐसा समझकर ही
महाराज साहेब मुझे सतत सलाह देते ही जा रहे हैं ।
यह तो ठीक नहीं हो रहा ।'
हो सकता है कि तेरे मन मे ऐसे विचार चलते हो ।
परन्तु मै तुझे यकीन दिलाता हूँ कि मैं
तेरी सब बाते सुनूँगा ।
तेरी वेदना व व्यथा मैं जरूर जानूँगा ।
तेरे आवेश को समझने का मैं जरूर प्रयत्न करूँगा ।
तेरी ऑख के ऑसुओ के पीछे छुपे हुए आक्रोश को
जरूर समझने की कोशिश करूँगा ।
परन्तु
इससे पहले मैं तुझसे जो अति महत्त्वपूर्ण बाते करना चाहता हूँ,
वे पत्रव्यवहार के माध्यम से तेरे आगे पेश करनी ही है ।
हो सकता है कि
उन बातो पर गभीरता से विचार करने मात्र से
तेरे मन का आक्रोश शान्त हो जाय,
तेरी व्यथा कम हो जाय,
तेरी गलतफहमी दूर हो जाय,
तेरे मम्मी-पप्पा के प्रति तेरा दुर्भाव रवाना हो जाय,

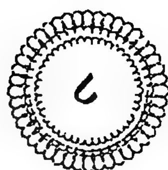
एकदम भारी बना हुआ तेरा अन्त.करण एकदम हल्का बन जाय,
मम्मी-पप्पा से अलग हो जाने के तेरे मन मे जागे हुए
विचार से पीछे लौटने का तुझे मन हो जाय ।
तो हाँ,
मेरी बात यह थी कि तेरे मम्मी-पप्पा तेरे लिये
जन्मदाता बने है, जीवनदाता बने है, तो
साथ ही साथ सस्कारदाता भी बने है ।
इस हकीकत को तू अपने स्मृतिपथ मे ला दे ।
जन्म देने के मामले मे मम्मी ने उपेक्षा की होती, तो
तू पेट मे से परलोक मे रवाना हो गया होता ।
जीवन सुरक्षित रखने के मामले मे मम्मी-पप्पा ने असावधानी
रखी होती, तो तेरा जीवन दीपक असमय ही बुझ गया होता
और
सुसंस्कारो का आधान करने के मामले मे मम्मी-पप्पा ने
ध्यान न रखा होता, तो
तू आज थोडा भी सज्जन या सदाचारी
रह पाया है, वह न रह पाया होता ।
मै तुझे ही पूछता हूँ कि भूतकाल मे
मम्मी-पप्पा द्वारा तुझ पर किये गये उपकार अधिक हैं या
मम्मी-पप्पा का वर्तमानकाल मे बिगडा हुआ स्वभाव अधिक है ?
बुद्धि के अभाववाली तेरी लाचार अवस्था मे मम्मी-पप्पा द्वारा
की गयी तेरी परवरिश अधिक है या
बुद्धि की अल्पतावाली मम्मी-पप्पा की अशक्त अवस्था मे तेरे
द्वारा की गयी उनकी अवगणना अधिक है ?
दर्शन, किसी शायर की पंक्तियाँ लिखकर फिलहाल तो यह
पत्र यहीं समाप्त करता हूँ ।'इतना अन्तर न हो सहवास मे
कहीं कुछ कमी है,
विश्वास मे '
सोचकर जवाब लिखना ।

महाराजसाहेब,



ऑखे अश्रुसभर हैं,
दिल व्यथासभर है
हृदय सवेदनासभर है ।
आपकी ओर से मिले पिछले चार पत्रों ने मेरे अन्दर
हलचल मचा दी है ।
मुझ पर मम्मी-पप्पा के इतने उपकारो का आज तक
मुझे कोई विचार ही नहीं आया और
आपके साथ पत्रव्यवहार शुरू न किया होता, तो
शायद जिदगी की अन्तिम पल तक भी
मुझे इसका विचार ही नहीं आता ।
आपको यह जानकर आनन्द होगा कि
आपके चारों पत्र पढने के बाद बहुत समय बाद
कल मैंने मम्मी-पप्पा के साथ
एक घटे तक प्रसन्नतापूर्वक बाते की ।
मम्मी-पप्पा भी मेरे इस बदले हुए अभिगम से
आश्चर्यचकित हुए हो, ऐसा मुझे महसूस हुआ ।
हॉ, मम्मी-पप्पा से अलग हो जाने के मन मे उठे हुए
विचार पर फिलहाल तो पूर्णविराम रख दिया है ।
परन्तु,
फिर भी मैं आपसे एक अनुरोध करता हूँ कि
मेरे मन मे चल रहे विचारों के इस द्वद्व का
आपको मुझे समाधान तो देना ही पडेगा ।
भूतकाल के उनके उपकार अवश्य मेरे सर पर हैं,
परन्तु वर्तमान के उनके चिडचिडे स्वभाव के साथ
स्वस्थतापूर्वक किस प्रकार जीया जाय ?
घर के पास ही दस वर्ष पूर्व गगा नदी बहती थी,
यह बात मजूर है, परन्तु आज घर के पास दुर्गन्ध फैलानेवाला
नाला बह रहा है, तो उस नाले की उपस्थिति मे स्वस्थता कैसे

टिकायी जाय ?
आखिर सबको जीना तो वर्तमान मे ही है न ?
भूतकाल भव्य था, स्वीकार लिया।
भविष्यकाल भव्य होगा, यह भी मान लिया, परन्तु
वर्तमानकाल खतरनाक व भयंकर उपस्थित हुआ है,
उसका क्या ?
महाराज साहेब,
बुरा न लगे तो कहूँ ?
सिर्फ मेरी ही नहीं, मेरे जैसे अनेक युवको की
अपने मम्मी-पप्पा के लिये यह फरियाद है कि
उनका स्वभाव बिगडता जा रहा है।
जमाने के साथ तालमेल रखकर जीना तो उन्हे आता ही नहीं।
नयी पीढी के मानस को समझने के लिये
वे बिलकुल तैयार ही नहीं।
'Let go करने की उदारता तो उनके खून मे ही नहीं।
इस उम्र मे भी मालिकी का दावा छोडने की उनकी तैयारी ही नहीं।
इन्सान चाहे जितना हिम्मतबाज क्यों न हो,
रास्ते मे मोड आने पर उसे मुडना ही पडता है।
यदि वह मुड जाय, तो अपनी मजिल तक पहुँच जाता है,
परन्तु अभिमान के नशे मे यदि वह मुडने के लिये तैयार न हो,
तो शायद वह जान से हाथ धो बैठता है।
मम्मी-पप्पा को समझना नहीं चाहिये ?
बदले हुए संयोगों मे उन्हे अपना स्वभाव बदलना
नहीं चाहिये ?
पूर्वपत्र मे आपने मुझे किसी शायर की शायरी लिखी थी न ?
इस पत्र मे मैं भी आपको एक शायर की शायरी लिखता हूँ-
'पहले आकार पाती है, सबन्ध के स्तर पर संवेदना,
न पाये परवरिश मन की, तो वह संशय बनने लगती है।'
मेरे साथ यही हो रहा है। बचने का उपाय ?



दर्शन,

एक छोटी-सी परन्तु अति महत्त्वपूर्ण बात की ओर तेरा ध्यान
खींचना चाहता हूँ ।
ईख का टुकडा टेढा हो,
तो भी उसका रस तो मीठा ही होता है ।
धनुष की डोरी टेढी हो,
फिर भी तीर तो सीधा ही जाता है ।
नदी का बहाव टेढा हो,
तो भी उसका पानी तो मीठा ही होता है ।
बस,
इसी न्याय से
सामनेवाले व्यक्ति का स्वभाव कठोर होने पर भी
संवेदनशील चित्त उसके स्वभाव के साथ भी समाधान
करके स्वस्थता टिका सकता है
और प्रसन्नताका अनुभव कर सकता है ।
मान लिया कि तेरा स्वभाव अभी अच्छा है, परतु
तू जन्मा तब से तेरा स्वभाव इतना अच्छा ही था ?
स्तनपान कराती हुई मम्मी को, तूने कभी लाते भी मारी होंगी न ?
बाहर भटकने जाने से रोकनेवाली
मम्मी को कभी कभी तूने दो-चार अनुचित शब्द भी सुनाये होंगे न ?
मित्र बिगडे हुए है, ऐसा जानने पर
पप्पा ने उन मित्रो से तुझे दूर रखने के प्रयत्न
किये होंगे, तब पप्पा के साथ तूने तुच्छ बर्ताव भी किया होगा न?
तेरे जीवनविकास के लिये तुझे नापसन्द ऐसी सलाह
देनेवाले पप्पा के साथ तूने अभद्र व्यवहार भी किया होगा न ?
सक्षेप मे,
भूतकाल मे अनेक प्रसगों मे मम्मी-पप्पा के साथ
तूने तुच्छ, अभद्र व अनुचित वर्तन अपने खराब स्वभाव के
कारण ही किया होगा न ?

उस वक्त मम्मी-पप्पा ने क्या किया ?
तुझे घर से बाहर निकाल दिया ?
तुझे खिलाना-पिलाना बन्द कर दिया ?
तेरे साथ सम्बन्ध तोड डाले ?
उन्होने भी तेरे साथ अभद्र व्यवहार किया ?
नहीं,
उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया।
तेरे गलत स्वभाव से जन्य
अभद्र व्यवहार को याद रखे बिना उन्होने तुझे
सतत प्यार ही दिया
वात्सल्य ही दिया।
यदि इस वास्तविक्ता से तू सहमत है,
तो मै तुझसे पूछता हूँ कि
मम्मी-पप्पा के साथ तेरा यही अभिगम क्यो नहीं ?
उनका स्वभाव बिगडा हुआ हो, फिर भी
उनके प्रति सद्भाव टिकाये रखने के लिये तू
क्यो तैयार नहीं ?
प्रेम, स्नेह व आदर देकर उनके दिल को
ठडक पहुँचाने की तेरी तत्परता क्यो नही ?
सुख का अनुभव करने के लिये
हम स्वभाव के अनुकूल परिस्थिति का
निर्माण करने लगे,
परन्तु इसमे कामयाब न हों, तब
परिस्थिति के अनुकूल स्वभाव बनाकर
सुख का अनुभव करने की कला हम क्यो न सीख ले ?
दर्शन, सच बताऊँ ?
मम्मी-पप्पा के स्वभाव के कारण तू फिलहाल अस्वस्थ नहीं है परन्तु
तेरे अपेक्षा के चोकठे मे मम्मी-पप्पा का स्वभाव जमता नहीं,
इसीलिये तू अभी अस्वस्थता का अनुभव कर रहा है।

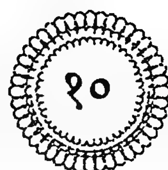
महाराजसाहेब,



आपका पत्र पढा ।
शाति से उस पर विचार करने से आपकी बात दिमाग मे
बैठती भी है,
परन्तु, मुसीबत तो यह है कि
घर मे कई घटनाये ऐसी घटती है जिनमे
पिताजी की ओर से मुझ पर
व
मम्मी की ओर से मेरी पत्नी पर सतत अन्याय होता ही रहता है ।
सिर्फ एक ही बात बताऊँ ?
दो वर्ष पूर्व पप्पा ने हम दोनो भाईयो को
घर मे से व धधे मे से अलग कर दिया ।
पप्पा ने समान हिस्से करने के बदले
अन्याय करके बडे भाई को अधिक जायदाद दी,
मम्मी ने भी
बिना किसी कारण के
भाभी को अधिक गहने दिये
व मेरी पत्नी को कम दिये ।
दुश्मन की ओर से अथवा
पराये की ओर से होनेवाला अन्याय तो
सहा जा सकता है,
परन्तु घर मे से ही स्वयं मम्मी-पप्पा की ओर से ही
जब अन्याय किया जाता है
तब तो सर चकरा जाता है ।
आपके कहने से
मैं एक बार मम्मी-पप्पा के विचित्र स्वभाव को भी निभा लूँगा
परन्तु
इस अन्याय का क्या ?
इस पक्षपात का क्या ?

दर्शन,
अन्याय की बात अदालत मे या बाजार मे बराबर है,
परन्तु
घर मे तो प्रेम का ही प्राधान्य होता है, इसीमे घर का गौरव है ।
यदि तेरे दिल मे सच मे ही
भाई-भाभी के प्रति भरपूर प्रेम होता, तो
पप्पा-मम्मी की ओर से उनको मिली अधिक जायदाद या
गहनो के लिये तेरे मन मे तनिक भी रज नहीं होता,
उसके बदले अपार आनन्द होता ।
कोई बात नहीं, आखिर तो भाई-भाभी को ही अधिक मिला है न ?
उनका यह अधिकार भी है ।
धधे मे मै तो पीछे से जुडा हूँ ।
धंधे की शुरूआत तो भैया ने ही की है ।
व्यवसाय को विकसित करने मे मुझसे ज्यादा योगदान भी उन्ही का है ।
उनकी मेहनत भी अधिक है । इसीलिये
पप्पा ने मुझसे भी ज्यादा उन्हे देकर ठीक ही किया है ।
इस तरफ मम्मी ने भी भाभी को अधिक गहने देकर भी
योग्य ही किया है ।
क्योकि इस घर मे भाभी पहले आयी है
मेरी पत्नी बादमे आयी है ।
भाभी ने मम्मी का कामकाज का बोझ पहले उतारा है,
मेरी पत्नी ने तो पीछे से आकर उसमे साथ दिया है ।
ये सब बाते ध्यान मे रखकर मम्मी ने भाभी को अधिक
गहने देकर सच मे भाभी की कद्र की है ।
मम्मी-पप्पा की इस सूझ के लिये मुझे उन्हे धन्यवाद देने चाहिये ।
दर्शन, भाई-भाई के प्रति तेरे दिल मे अपार प्रेम होता, तो
ऐसी ही कोई विचारधारा चली होती, परन्तु तेरे मन मे जो
विचारधारा चली है, वह यही सूचित करती है कि
दिल मे प्रेम का स्थान द्वेष ने ले लिया है ।

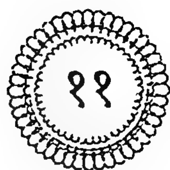
दर्शन,



मै मान लूँ कि भाई-भाभी के प्रति तेरे मन मे ऐसा कोई
द्वेष नहीं, फिर भी मम्मी-पप्पा के प्रति भी इतना सद्‌भाव तो नहीं,
यह तो निश्चित ही है।
नहीं तो, उनके ऐसे सुख के लिये तेरे मन मे आक्रोश या
असंतोष पैदा ही नहीं होता।
हॉ, एक बात तेरे मन की दीवार पर लिख रखना कि
लकडा चाहे जितना वजनदार क्यो न हो, फिर भी
यदि उसके नीचे पानी आ जाता है, तो उस लकडे के वजन का
कोई भार नहीं लगता। सिर्फ एक छोटा-सा धक्का दिया जाय
और लकडा आगे रवाना।
बस, इसी न्याय से चाहे जैसी विकट या विषम
परिस्थिति उपस्थित हो जाय, तो भी
यदि हृदय प्रेमसभर है, तो वह विषम परिस्थिति व्यक्ति के लिये
तनिक भी कष्टदायक नहीं बनती।
प्रेम के प्रवाह मे यह विकट परिस्थिति बहे बिना नहीं रहती।
तू तेरे मन का निरीक्षण कर लेना।
तुझे विश्वास हो जाएगा कि
धधे मे व घर मे पडे हुए हिस्से के लिये तेरे मन मे उठी हुई
बेचैनी के मूल मे
सिर्फ यह एक ही कारण है।
या तो प्रेम का अभाव, या फिर प्रेम की अल्पता।
तुझे एक बात बताऊँ ?
तूने ऐसी कोई अदालत देखी है जहॉ हमेशा
प्रसन्नतासभर वातावरण ही रहता हो ?
इसका जवाब तुझे 'ना' मे ही देना पडेगा।
जहाँ सतत न्याय पाने के लिए संघर्ष चलते होते है,
जहॉ फैसले न्याय (?) के दिये जाते है,
वहॉ वातावरण मे प्रसन्नता क्यो नहीं ? ताजगी क्यो नहीं ?

आह्लादकता क्यो नहीं ? आनन्द क्यो नहीं ?
इसका एक ही कारण है ।
न्याय मे एक घर मे ही उजाला होता है ।
साथ ही साथ दूसरे घर मे अधेरा हो जाता है ।
एक के पराजय से ही दूसरे को विजय मिलती है ।
एक के गाल पर आँसू बहते है,
तभी दूसरे के मुख पर हास्य खिलता है ।
एक ही खुशी दूसरे की उदासी बन जाती है ।
मेरे कहने का आशय यह नहीं है कि
यह व्यवस्था पूर्ण रूप से गलत ही है ।
मै तो यही कहूँगा कि
अदालत मे चाहे न्याय शोभा देता हो.
परन्तु घर तो समाधान से ही शोभित होता है ।
हक ही मारामारी चाहे अदालत मे होती हो,
घर तो कर्तव्य के एहसास से ही गौरव पाता है ।
अधिकार की बाते परायो के बीच चाहे होती हो,
परन्तु अपनो के साथ तो त्याग की बाते ही शोभास्पद बनती है ।
क्या बताऊँ तुझे ?
सत, सज्जन व स्वजन
इन तीनो की एक विशेषता यह होती है कि
अपने साथ हुए अन्याय की बात सत पवन पर लिखते है ।
सज्जन पानी पर लिखते है, जबकि स्वजन रेती पर लिखते है ।
तू जगत की दृष्टि मे चाहे सत न बना हो,
समाज ने चाहे तुझे सज्जन के रूप मे न स्वीकारा हो,
परन्तु मम्मी-पप्पा ने तुझे स्वजन के रूप मे तो स्वीकारा ही है न ?
तो तेरा यह कर्तव्य हो जाता है कि उनकी ओर से
तुझे शायद अन्याय हुआ भी हो, फिर भी तुझे रेती पर लिखकर
उसे मिटा देना है ।
तू उसे पत्थर पर खुदवाकर रखे, तो कैसे चलेगा ?

दर्शन,



स्वय पर हुए अन्याय के मामले मे सत, सज्जन व स्वजन के
अभिगम चाहे भिन्न होते हों,
परन्तु स्वय पर हुए उपकारों के मामले मे, तो
इन सबका एक ही अभिगम होता है
और यह अभिगम यह होता है कि
अपने पर हुये उपकारों को ये सब सगमरमर के तख्त पर खुदवाते हैं।
उपकार बडा हो या छोटा,
यह उनके लिये बहुत महत्वपूर्ण नहीं होता।
वे तो किसीकी भी ओर से स्वय पर हुए उपकारो को
सगमरमर के तख्त पर खुदवा देते हैं।
इसका तात्पर्यार्थ स्पष्ट है।
स्वय पर हुये अन्याय को सत जल्दी भूल जाते है, सज्जन को थोडी
देर लगती है, स्वजन को अधिक देर लगती है।
परन्तु
उपकार को तो वे कभी भूलते ही नहीं।
मॉ-बाप की नजर मे तू स्वजन है,
तो तेरी नजर मे मॉ-बाप स्वजन हैं।
तो मैं तुझसे इतना ही पूछता हूँ
तेरी मनोवृत्ति कैसी होनी चाहिये ?
अन्याय की कोई स्मृति नहीं,
उपकार की कोई विस्मृति नहीं।
यही या अन्य कोई ?
मुझे लगता है कि प्रेम की जगह संपत्ति का उपयोग करनेवाला
जिस प्रकार कुटुंब मे मार खा जाता है, उसी प्रकार
हृदय की भाषा का प्रयोग करने के बदले बुद्धि की भाषा
बोलनेवाला भी कुटुंब मे मार ही खाता है।
तेरे साथ भी यही हुआ है।
तेरे पास उफनती हुई जवानी है,

अपार सपत्ति है और
पैनी बुद्धि है ।
इस जवानी, संपत्ति व बुद्धि की गर्मी ने तेरे हृदय की
संवेदनाओं के पुष्प को सुखा दिया है ।
नहीं, तो तू ऐसी कनिष्ठ मनोवृत्ति का शिकार बनता ही नहीं ।
विद्रोह
और वह भी जन्मदाता मम्मी-पप्पा के सामने ?
आक्रोश
और वह भी जीवनदाता मम्मी-पप्पा के सामने ?
गुनहगार मानने की बात
और वह भी सस्कारदाता मम्मी-पप्पा के आगे ?
एक बात पर तेरा ध्यान खींचना चाहूँगा ।
सपत्ति के नुकसान के आघात को झेलना इन्सान के लिए आसान है ।
बिगडे हुऐ स्वास्थ्य के आघात को इन्सान फिर भी शायद सह लेता है ।
बे-आबरु हो जाने के आघात को झेलने मे भी
इन्सान को बहुत दिक्कत नहीं होती,
परन्तु
उपेक्षित हो रही संवेदनाओ के आघात को झेल पाना इन्सान के लिये
अत्यन्त मुश्किल हो जाता है
और कभी कभी तो आघातो को झेल पाने की असमर्थता मे ही
इन्सान आत्महत्या का मार्ग अपनाकर जीवन-लीला समाप्त कर देता है ।
मम्मी-पप्पा के प्रति तेरा अभी का ठडा रूख
व गलत बर्ताव
उनकी तेरे प्रति जो सवेदना है, प्रेम है,
उस पर सीधा आक्रमण ही है,
यह बात तू ध्यान मे रखना ।
उनका रुखा स्वभाव शायद तेरे मौज-मजा पर आक्रमण
करनेवाला बन रहा है, जबकि तेरा कृतघ्नी स्वभाव तो उनकी
सवेदनाओं पर कुठाराघात करनेवाला बन रहा है, यह तू जानता भी है ?

दर्शन,

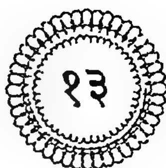


एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा इस पत्र मे मै तुझे पिछले पत्र मे बतायी हुई हकीकत की सत्यता की प्रतीति कराना चाहता हू ।

लुहार व सुनार
दोनों के बीच एक छोटी-सी दुकान ।
दोनों एक साथ काम करते है ।
लुहार लोहे को पीटकर औजार बनाता है,
सुनार सोने को पीटकर गहने बनाता है ।
एक बार ऐसा हुआ कि लोहे के टुकडे को पीटते-पीटते
लुहार का हथोडा टुकडे की धार पर पडा
और वह टुकडा उछलकर सीधा बाजु मे, जहॉ सुनार सोने को पीट रहा था, वहॉ पडा ।
काफी समय से सोने के टुकडे के मन मे लोहे के टुकडे को
एक प्रश्न पूछने की इच्छा थी, परन्तु इसमे
उसे सफलता नहीं मिल रही थी,
किन्तु
आज जब लोहे का टुकडा स्वय ही
उसके पास आ गया था,
तब उसे लगा कि आज तो मेरी शका का समाधान कर हीं लूँ ।
उसने लोहे के टुकडे से पूछा
'लोहे भाई । एक प्रश्न का जवाब दोगे ?'
'पूछो' ।
'तुम्हे लुहार भठ्ठी मे डालकर पीटता है,
उसी तरह मुझे भी भठ्ठी मे डालकर सुनार पीटता है,
तुम्हे वेदना होती है,
तो मुझे भी कुछ कम वेदना नहीं होती ।
परन्तु मै इतनी जोर से आवाज किये बिना
चुपचाप सोनी के हाथ की मार खा लेता हूँ,
जबकि तुम तो मार खाते-खाते कितनी आवाज करते हो ।

मै यह जानना चाहता हूँ कि
इतनी आवाज करने का क्या कारण है ?'
सोने के टुकड़े का यह प्रश्न सुनकर लोहे के टुकडे की ऑख मे
ऑसू आ गये ।
रोते हुये उसने जवाब दिया
'सोना भाई । तुम्हारी बात सही है । समान वेदना होने पर भी
मै तुमसे ज्यादा आवाज क्यो करता हूँ ?
लो, सुनो इसका जवाब ।
तुम्हे हथोडी की मार पडती है, यह बात सच है, परन्तु तुम्हे मारनेवाला
तुम्हारा भाई नहीं है, जबकि मुझ पर हथोडा टूट पडता है
वह आखिर तो मेरा ही भाई है ।
बाहरवाले मारे, इसकी वेदना तो फिर भी शायद सहन हो सकती
परन्तु मारनेवाला जब घर का ही है, ऐसा मालूम हो जाय,
तब तो वेदना असह्य बन ही जाती है ।
अब तुम ही बताओ, मार खाते-खाते मे चीख उठता हूँ,
इसमे आश्चर्य किस बात का ?'
दर्शन,
इस दृष्टान्त के उपनय को समझ सके, ऐसी सूक्ष्म बुद्धि का तू
मालिक है, यह बात मैं जानता हूँ ।
कल्पना करके देखना, तेरी ही ओर से हो रही मम्मी-पप्पा की
'वगणना, उपेक्षा या अनादर
उनके दिल मे वेदना की कैसी ज्वाला पैदा करती होगी ?
शायद उनकी वय उन्हे ऑखों मे से ऑसू बहाने से
रोकती होगी, परन्तु
उनका अन्तर व्यथा से कितना पीडित होता होगा ?
उनकी जीभ शायद पुख्त वय के कारण दीनताभरे शब्द नहीं
बोलती हो, परन्तु
उनका दिल कितनी करुण पुकार करता होगा ? चीखता होगा ?
तू गंभीरता से विचार करना, तू कॉप उठेगा ।

महाराजसाहेब,



आपके कल के पत्र ने तो मेरी सारी रात
अश्रुमय बना दी ।
मुझे रोते हुए न मेरी पत्नी रोक पायी
कि न मेरे मम्मी-पप्पा रोक पाये ।
मेरे ऐसे करुण रुदन का कारण सबने मुझे पूछा ।
परन्तु मै बोल पाने की स्थिति मे ही न था ।
अभी मै आपको यह पत्र लिख रहा हूँ, तब भी
मेरा हृदय व्यथित है,
मेरी ऑखे भारी है,
मेरे हाथ कॉप रहे है,
मेरा दिमाग गुमसुम हो गया है ।
सच मे ही मुझे समझ मे आ गया है कि
आवेश कहो तो आवेश मे,
अज्ञान मे कहो तो अज्ञान मे,
और
जवानी के नशे मे कहो तो नशे मे
मम्मी-पप्पा के दिल को ठेस लगे, ऐसा वर्तन मैने किया है ।
'ऐसे कृतघ्न पुत्र को जन्म देने के बदले
मै बांझ रही होती, तो अच्छा होता'
ऐसे विचारों मे मम्मी को चढना पडे, ऐसी कनिष्ठ प्रवृत्तियॉ
मैने अनेक बार की ही है ।
'ऐसे अधम पुत्र के पिता के रूप मे, उसके पीछे
मेरा नाम लिखे जाने मे मेरी गौरवहानि होती है ।'
पप्पा को ऐसे विचारो मे उतरना पडे, ऐसा निचले
स्तर का कहा जा सके,
वैसा व्यवहार अनेको बार मैने उनके साथ किया ही है ।
मेरे उष्माहीन व्यवहार से
आत्महत्या करके जीवन समाप्त कर देने के विचार भी उन्हे

अनेक बार आ ही गये है ।
आपने समय पर मेरी ऑखे खोल दी है ।
इसके लिये आपका जितना आभार मानूँ, उतना कम है ।
मै चाहता हूँ कि
मेरे हृदय की यह आर्द्रता
बुद्धि की गर्मी के कारण सूख न जाय ।
मेरे मन की यह सम्यक् समझ
प्रतिकूल परिस्थिति मे भाप बनकर उड न जाय ।
मेरे अन्तर मे प्रकटा हुआ कृतज्ञभाव का दीपक
मम्मी-पप्पा के चाहे जैसे कठोर या कर्कश व्यवहार के बीच भी
प्रज्वलित ही रहे ।
आप इसके लिये शुभाशीर्वाद भी दीजियेगा
व
मगल मार्गदर्शन भी दीजियेगा ।
दर्शन,
बाह्य जगत मे दुपहर मे बारह बजे उठनेवाला
शायद 'लेट' गिना जाता है, परन्तु
आभ्यन्तर जगत में तो बावन वर्ष मे जागनेवाला भी
'जल्दी' ही गिना जाता है,
यह बात ध्यानमे रखना ।
आज तक मम्मी-पप्पा के प्रति किये हुए गलत व्यवहार
के लिये तेरे हृदय मे पछतावा पैदा हुआ है, यह तो अच्छी
बात है । इसके लिए तुझे धन्यवाद भी देता हूँ,
फिर भी मन के कुटिल स्वभाव को ध्यान मे रखकर
फिलहाल तो इतना ही कहूँगा कि
इस पछतावे को, परिवर्तन को या सवेदनशीलता को यदि तू
सचमुच दीर्घजीवी बनाये रखना चाहता हो, तो
हृदय को पहले स्थान पर रखना,
बुद्धि को दूसरे स्थान पर रखना ।

महाराजसाहेब,

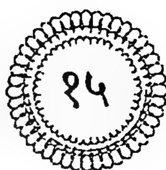


बुद्धि को दूसरे स्थान पर रखने की आपकी सलाह जानी ।
परन्तु समस्या
यह है कि वर्तमान जगत मे
सर्वत्र बुद्धि की ही बोलबाला है ।
यदि प्रेम को प्रधानता देकर जीवनव्यवहार चलाने जाते है,
तो अनुभव ऐसे है कि करीब-करीब मार ही खानी पड़ती है ।
निष्फलता ही मिलती है ।
पदार्थ के क्षेत्र मे नुकसान ही उठाने पडते है ।
जगत के लोगों के बीच 'फक्कडबाबा' ही बने रहना पडता है ।
इस अपाय से बचने का कोई उपाय है ?

दर्शन,
शायद तेरी बात सच है,
फिर भी मैने तुझे जो सलाह दी है, वह एकदम सही है
क्योंकि
हृदय को प्रथम स्थान पर रखने की मेरी जो सलाह है
वह उपकारियो के साथ के व्यवहार के बारे मे है ।
मम्मी-पप्पा तेरे उपकारी है ।
उनकी साथ के व्यवहार मे बुद्धि दूसरे स्थान पर रहे
व हृदय प्रथम स्थान पर रहे ।
बस, इतनी सावधानी तुझे रखनी है ।
एक छोटे से उदाहरण के द्वारा मै तुझे यह बात समझाता हूँ ।
दुपहर के बारह बजे है,
तेरा ऑफिस जाने का वक्त हो गया है ।
तू तैयार होकर जैसे ही घर से बाहर पॉव रखने की तैयारी
करता है वहीं तेरे कान मे 'पप्पा को ठडा बुखार चढा है'
शब्द सुनायी देते है ।
बुद्धि कहती है
अभी ऑफिस जाना चाहिये

क्योकि धधे का ऑर्डर मिलने की सभावना है ।
हृदय कहता है,
अभी पप्पा के पास ही बैठना चाहिये,
क्योकि अभी तो बुखार की शुरूआत है । यदि समय पर
उपचार हो जाय, तो बुखार काबू मे आ जायेगा
और यदि इसमे उपेक्षा हो, तो स्वास्थ्य ज्यादा बिगडने
की भी सभावना है ।
बस, ऐसे प्रसग पर होनेवाले बुद्धि व हृदय के बीच के सघर्ष मे
बुद्धि न जीते और हृदय ही जीते,
इसकी सावधानी रखने मे यदि तू कामयाब हो जाय, तो
तेरा वर्तमान हृदयपरिवर्तन दीर्घजीवी बना ही समझना । यह
बात मै तुझे समझकर ही कर रहा हूॅ,
क्योकि मै बराबर जानता हूॅ कि
शान्ति के समय मे किये गये निर्णय
आंधी-तूफान के समय मे टिकाये रखने का काम तो
मोम के दातो से लोहे के चने चबाने से भी अधिक कठिन है ।
अभी तेरा हृदय भीगा हुआ है,
अन्त करण पछतावे से भरा हुआ है,
मन गलतियॉ करनेकी वेदना से त्रस्त है,
दिल उपकारों की स्मृति से भावित है ।
जिस प्रकार भीगी हुई मिट्टी पर
मनचाहे आकार बनाये जा सकते है, उसी प्रकार हृदय जब
सवेदनाओ से सभर होता है तब सुन्दर जीवन जीने के
निर्णय सहज मे ही लिये जा सकते है ।
जो भी समस्या है, वह मिट्टी के सूखने के वाद की है ।
प्रतिकूल परिस्थिति उपस्थित हो, उसके वाद की है ।
दर्शन, इसी संदर्भ मे पढ ले, किसी शायर की ये पक्तियॉ
हृदय को जी भरकर जीने दो, बुद्धि से कहो वहुत वोले नहीं,
सोने की मूर्ति को लोहे की तराजू मे रखकर कभी कोई तोले नहीं ।

महाराजसाहेब,



शब्दों मे एकदम सीधीसादी लगनेवाली 'हृदय को नबर एक पर
और बुद्धि को नबर दो पर' रखने की बात अमल मे लानी
सचमुच बहुत मुश्किल है ।
क्योकि
मम्मी-पप्पा के साथ के
दो-तीन व्यवहार मे मैने इस पर अमल करने की मेहनत भी की,
परन्तु,
मै इसमे नाकामयाब रहा ।
बुद्धि न हो और बुद्धि का उपयोग न करना, यह बात अलग है,
परन्तु
बुद्धि होने पर भी बुद्धि का उपयोग न करने मे तो जैसे मन मे
एक प्रकार की घूटन महसूस होती हो, ऐसा लगता है ।
प्रश्न यह है कि
बुद्धि को इस हद तक निष्क्रिय बना देना योग्य है ?
दर्शन,
बुद्धि के उपयोग की मनाई नहीं है,
उसके आधिपत्य की मनाई है ।
वह सेवक रूप मे श्रेष्ठ है परन्तु
मालिक के रूप मे बहुत खतरनाक है ।
वह खडदर्शन करके परिस्थिति को उलझा देती है ।
सत्यदर्शन के बहाने वह स्नेहदर्शन की हत्या कर देती है ।
'मॉर्ग मे रहे हुए शव का जिस प्रकार डॉक्टर
पोस्टमॉर्टम कर देते है,
उसी प्रकार बुद्धि प्रत्येक परिस्थिति का,
उपकारी के प्रत्येक व्यवहार का,
उपकारी के प्रत्येक वचन का,
बस, पोस्टमॉर्टम ही किया करती है ।
'पप्पा को ऐसा नहीं करना चाहिये था,

मम्मी को ऐसा नहीं बोलना चाहिये था,
पप्पा-मम्मी का ऐसा वर्तन तो समाज मे
हमे कहीं का नहीं रहने देगा ।
जिदगी भर इस तरह मम्मी-पप्पा से दबकर ही रहेगे,
तो हम कमजोर ही रह जायेगे ।'
ऐसी विविध प्रकार की विचारधारा बुद्धि का फल है ।
मै तुझसे पूछता हूँ,
ऐसे विचारो के बाद भी मम्मी-पप्पा के प्रति
तेरा सद्भाव टिक पायेगा भला ?
मम्मी-पप्पा के प्रति
तेरी कोमल भावनाये टिक पायेगी भला ?
तेरा जवाब 'ना' मे ही आयेगा ।
बस, इसी सभवित भयस्थान को ध्यान मे रखते हुए ही मैने तुझे
'हृदय को नबर एक पर व बुद्धि को नबर दो पर'
रखने की सलाह पिछले पत्र मे दी थी ।
दर्शन,
हृदय का काम है-हॅसते रहना व
हॅसते रखना
जबकि
बुद्धि का काम है- सामनेवाले को चुप करके
स्वयं का वर्चस्व स्थापित करना ।
बुद्धि शायद हॅसती है,
परन्तु सामनेवाले को रुलाकर, कष्ट देकर, दु खी करके,
परेशान करके, पराजित करके,
व्यथित करके, घाटे मे उतारकर,
पूरी तरह से साफ करके ।
नहीं, नहीं, सेवक के रूप मे अच्छी परन्तु मालिक के रूप मे खतरनाक
ऐसी बुद्धि को तू नंबर एक पर बिठाने की भूल तो
हर्गिज मत करना । जीवन जीत जायेगा ।

महाराजसाहेब,



आपके पत्र से मै स्तब्ध हो गया हूँ ।
मेरे स्वय के अनुभवों का विहगावलोकन करने पर
मुझे स्पष्टतया समझ मे आ गया कि
मैने बुद्धि के उपयोग के द्वारा यही तो किया है ।
सामनेवाले व्यक्ति के प्रत्येक शब्द व वर्तन का पोस्टमॉर्टम
और बाद मे
क्लेश, निन्दा, छल-प्रपंच व दुर्भाव ।
मम्मी-पप्पा के प्रति दुर्व्यवहार मे भी ऐसा ही हुआ है ।
मैने न उनके प्रेम के सामने देखा कि
न ही उनकी परिस्थिति का विचार किया ।
न मैने उनके शब्दों का तात्पर्य समझने की कोशिश की
और न ही उनके नजरिये से उनकी बात को समझने का
प्रयत्न किया ।
मैने एक ही सिद्धात रखा है-
मेरी बुद्धि मे जो न बैठे वह सब उन्हे छोड देना चाहिये
और
मेरी बुद्धि मे जो बैठे, वह सब उन्हे करना ही चाहिये ।
२५ वर्ष का युवक
५ वर्ष के बालक के पास अपने जैसी तेज चाल की
अपेक्षा रखे,
इसमे यदि उसे निष्फलता ही मिले, तो
जवानी के जोर मे
मैं मेरे वृद्ध मम्मी-पप्पा के पास
यौवनसहज स्फूर्ति की अपेक्षा रखूँ, तो
इसमे मुझे सफलता कैसे मिलेगी ?
आपकी बात एकदम सच है ।
उपकारियो के प्रति कृतज्ञभाव टिकाये रखना हो, तो
बुद्धि के आधिपत्य को तोडना ही होगा ।

फिर भी मै आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ कि
कुछ बातो मे मम्मी-पप्पा के साथ अथवा
कुटुंब मे प्रेम से भी बुद्धि को प्राधान्य देना ही ज्यादा
जरूरी हो, वहॉ सावधानी कैसे रखी जाय ?
दर्शन
तेरा प्रश्न योग्य है,
क्योकि हो सकता है कि तेरे धधे के बारे मे
मम्मी-पप्पा को खास जानकारी न भी हो,
कुछ व्यक्तियो के विचित्र स्वभाव के बारे मे,
उन्हे पता न भी हो,
सर्जी गई विचित्र परिस्थिति मे वर्तमान मे रास्ता किस प्रकार
निकाला जाय, इसकी सूझ उन्हे न भी हो,
तब तुझे
मम्मी-पप्पा के प्रति अत्यन्त आदर होने पर भी
बुद्धि को प्राधान्य देना ही पडता है ।
कभी -कभी उनके प्रेम की अवगणना करके भी
तुझे कठोर बनना ही पडता है ।
ऐसे प्रसगो मे भी तू एक ही सावधानी रखना कि
विचारों का घर्षण इस हद तक आगे न बढ जाय कि
प्रेम के सम्बन्धो को वह छिन्न-भिन्न कर डाले ।
मम्मी-पप्पा के प्रति कठोर बनने का तेरा अभिगम
इस हद तक आगे
न बढ जाय कि, जो
तेरे लिये उनके मनमे कडवाहट की भावना
उत्पन्न कर दे ।
पढ ले किसी शायर की ये पक्तियॉ-
'सुख के प्रवाह हो या दु ख के उफान
शोभते है, जव उसकी प्रस्तुति कम रहे .'
तू सुज्ञ है, मै क्या कहना चाहता हूँ, इशारे मे ही समझ जाना ।

महाराजसाहेब,



आज मुझे पता चल गया है कि अनेक मामलो मे मै
सच्चा होने पर भी क्यो मार खाता रहा हूँ ?
मेरी प्रस्तुति सही
परन्तु उसमे विवेक नहीं,
मेरा दर्शन सच्चा, परन्तु उसमे सरलता नहीं,
मेरे विचार सही,
परन्तु उनमे मिठास नही ।
आक्रोश, आवेश, व आवेग
इन तीनो की खतरनाक त्रिपुटी ने मुझे कहीं भी चैन से रहने ही न दिया ।
सघर्ष करके सफलता पाता रहा,
परन्तु यह सफलता मेरे लिए आनन्दप्रद न बनी ।
दलीलबाजी मे मै मम्मी-पप्पा पर विजय पाता रहा,
परन्तु यह विजय मेरे लिए डकरूप बनी रही ।
खैर,
अब इस मामले मे मै बिल्कुल मार नहीं खाऊँगा ।
प्रेम के सबन्धो को छिन्न-भिन्न कर दे, ऐसी विचारधारा का
शिकार अब मै कभी भी नहीं बनूँगा ।
असरकारी हो, परन्तु हितकारी न हो,
ऐसे रुख को मै कभी भी वर्तनरूप बनने नहीं दूँगा ।
प्रश्न तो यह उठता है कि
परिणाम देखने के बाद भी प्रवृत्ति मे फेरफार करने का मन नहीं
होता । इसके पीछे कौन-सा परिबल जवाबदार होगा ?
दर्शन,
मजबूत पॉववाला इन्सान जिस प्रकार हाथ मे लाठी लेने के लिये
तैयार नहीं होता, ऑखो से देखनेवाला इन्सान जिस प्रकार किसी
और का हाथ पकड़ने के लिए तैयार ही नहीं होता,
उसी प्रकार
जिसे अपनी बुद्धि का बहुत गर्व होता है, वह

ढेर सारे गलत अनुभवों के बाद भी अपनी प्रवृत्तियों मे
परिमार्जन करने के लिये तैयार नहीं होता ।
क्योंकि ऐसा करने मे उसका अहं घायल हो जाता है ।
क्या बताऊँ तुझे ?
मैने ऐसे कई युवक देखे है कि
उनके मम्मी-पप्पा उनके जीवन के विषय मे
निर्णय लेने मे गलत थे,
ऐसा साबित करने के लिये जो अपने हाथों ही अपने जीवन की बरबादी को
न्यौता दे चुके है ।
स्वयं बनना था डॉक्टर,
पप्पा ने बना दिया इजिनीयर ।
बस, पप्पा के साथ बैर लेने के लिये इंजिनीयर बनने के बाद भी
उसने जॉब मे ठीक से ध्यान न दिया ।
आगे बढने के सब अवसर हाथ मे होने पर भी
उसने उनकी उपेक्षा ही की ।
स्वयं को जाना था हीरे के व्यवसाय मे,
पप्पा ने लगा दिया कपडे के व्यवसाय मे,
बस, पप्पा को दिखाने के लिये कपडे के व्यवसाय में
कमाने के कई अवसर होने पर भी उनकी पूर्णत उपेक्षा की ।
कमाई की जगह घाटा किया ।
दर्शन,
बुद्धि को तू क्या समझता है ?
वह कभी भी भूल को कबूल करने के लिए तैयार नहीं होती
परन्तु भूल को सही साबित करने के लिए ही तत्पर रहती है ।
वह दु:खी होने के लिए तैयार होती है, परन्तु
झुकना तो वह समझती ही नहीं ।
तेरे प्रश्न का यही जवाब है । अनुभव सब दु.ख के, उद्वेग के
व सताप के, फिर भी प्रवृत्ति मे परिमार्जन करने का विचार भी नहीं,
इसका एकमात्र कारण है, बुद्धि का मन पर आधिपत्य ।

महाराजसाहेब,



आपने तो मानो मेरी दर्द करती रग ही छेड दी है ।
यही तो हुआ है मेरे जीवन मे ।
मेरी इच्छा थी इजिनीयर बनने की,
परन्तु पप्पा का आग्रह था, बरसो से उनके हाथ मे रहे हुए व्यवसाय मे
मुझे जोडने का,
और उनकी इच्छानुसार ही हुआ ।
मेरी लाख अनिच्छा होने के बावजूद मुझे उनके साथ दुकान पर बैठना पडा ।
हालॉकि,
दुकान काफी जमी हुई थी और आज भी वैसी ही है,
परन्तु पप्पा की इस जबरदस्ती का बदला लेने के लिये
मैंने बरसों तक दुकान मे ध्यान ही नहीं दिया ।
ग्राहको को पकडे रखने के मामले मे मैंने मेरी कुशलता का
उपयोग ही नहीं किया ।
व्यवसाय विकसित करने के कई अवसर उपलब्ध होने पर भी
उन अवसरों का लाभ उठाने के मामले मे मैने कभी उत्साह दिखाया ही नहीं
हॉ,
मेरे इस असहकार भरे रूख को पप्पा जान ही गये है,
उन्हे इसकी व्यथा भी है,
एक बार उन्होने कह भी दिया कि बेटे ।
इजिनीयर बनने की तेरी बहुत इच्छा होने पर भी तुझे मेरे व्यवसाय मे
लगाकर मैने कोई भयकर अपराध किया हो, ऐसा मुझे
सतत महसूस होता है, व्यवसाय मे तेरा निरुत्साह देखकर ।
फिलहाल तो इस मामले मे मै और तो कर भी क्या सकता हूँ ?
परन्तु, मेरी इच्छा जबरदस्ती तुझ पर थोपने के लिये
मै तुझसे क्षमा मागता हूँ ।
महाराजसाहेब । इतना बोलते-बोलते तो पप्पा की ऑख के कोने मे रही
हुई ऑसू की बूदे मैने स्वय देखी है, फिर भी
मैने पप्पा को आज तक माफ नहीं किया है ।

परन्तु आपका पत्र पढने के बाद मैने इस मामले मे
झुकने का विचार तो किया है, फिर भी मन अभी तक दुविधा मे है ।
'जिस व्यक्ति ने मेरी पसन्द जानने पर भी
किसी भी ठोस कारण के बिना स्वयं की पसन्द मुझ पर
थोपकर मेरी जिदगी की दिशा ही बदल डाली,
उस व्यक्ति के साथ भला समाधान कैसा ?
सहकार कैसा ? सहयोग कैसा ?'
मन मे सतत ये ही विचार चल रहे है ।
आप ही बताईये, मै क्या करूँ ?
दर्शन,
मै तुझे एक बात याद दिलाना चाहता हूँ कि
जवानी के पौधे पर
अनुभव के फूल जल्दी नहीं आते
और जब आते है, तब
जो नुकसान हो चुका है, उससे वापस लौटना एक नौजवान के लिए
मुश्किल होता है । तेरी इच्छानुसार
यदि तू इजिनीयर बना होता,
तो तेरा जीवन एकदम बढिया ही होता
यह तो सिर्फ अनुमान की वात है ।
परन्तु,
पप्पा की इच्छानुसार आज तू व्यापारी वना है, इससे तेरा
जीवन समृद्ध बना ही है,
यह तो तेरा स्वय का ही अनुभव है
तो फिर
अच्छे अनुभव के वाद भी, सम्यक् परिणाम के वाद भी
पप्पा को माफ न करने पीछे तेरा अह, तेरी कुटिल बुद्धि,
तेरे दिल की वक्रता के सिवाय दूसरा कोई कारण नहीं । इतना ही
कहुँगा कि प्रसन्नता की कुर्वानी देकर अकडवाजी को जीवन्त
रखने मे कोई बुद्धिमानी नहीं ।

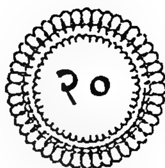


दर्शन,

जीवन मे सतत प्रसन्नता का अनुभव करना हो,
और स्वस्थता टिकाये रखनी हो, तो एक बात का
खास ध्यान रखना कि
कोई भी पद्धति
निर्माण की अवस्था मे हो और
प्रतिपल बदल रही हो, तब इसके बारे मे कोई विशेष
अभिप्राय देने का प्रयास कभी मत करना ।
आखरी ओवर की आखरी बॉल
न फेकी जाय, तब तक मैच के जय-पराजय
के बारे मे कोई निश्चित आगाही करने की या अनुमान करने की
क्रिकेट की दुनिया मे मनाही है,
तो
प्रक्रिया जब चल रही हो, तब
किसी निश्चित परिणाम के बारे मे आगाही या अनुमान करने की
जीवन की दुनिया मे भी मनाही ही है ।
यह बात अभी मै तुझे इसलिये कह रहा हूँ कि
इजिनीयर बनने के बदले तेरे पप्पा की इच्छा से
तुझे व्यापारी बन जाना पडा, इसके लिये तेरे मन मे पप्पा के प्रति
अभी भी जो रजिश है,
उसे दूर करने के लिये
यह विचारधारा तुझे बहुत ही लाभदायी बनेगी ।
मै मानता हूँ कि
अब इजिनीयर बनने के क्षेत्र मे तेरे जीवन पर पूर्णविराम
हो गया है, परन्तु
सिर्फ इसी कारण से तेरा जीवन दु खी नही हो गया ।
तू सडक पर नही आ गया ।
पप्पा ने तुझे व्यापार की दुनिया मे लगाकर तेरा सुख
छीन नही लिया ।

अभी भी लबी जिदगी तेरे हाथ मे है ।
तेरे पास शक्ति सभर जवानी है,
संपत्ति की भी तुझे कोई कमी नहीं ।
कल्पना कर कि यदि कल ऐसी परिस्थिति आ जाय कि
व्यापार मे सतत घाटा ही चलता रहे,
तो तू तेरे जीवन की नयी दिशा आसानी से तय कर सकता है,
परन्तु
ऐसी कोई सभावना आज कहीं दूर भी नज़र न आने पर भी
सिर्फ अह के कारण पप्पा के साथ
तू अलगावभरा बर्ताव करता है, वह उचित नहीं ।
दर्शन,
जीवन मे सफलता व प्रसन्नता
दोनो मूल्यवान है,
परन्तु दोनो मे से एक ही मिले, ऐसा हो,
अथवा दो मे से एक का ही चयन करना हो, तब
प्रसन्नता को पसन्द करने मे ही बुद्धिमत्ता है ।
तू फिलहाल भुलावे मे पड रहा है ।
सफलता तेरे पास है ।
भूतकाल की गलत स्मृति के सग्रह के कारण
प्रसन्नता तुझसे रुठ गयी है ।
मै चाहता हूँ कि तू भूतकाल को भूलकर पप्पा के साथ
समाधान कर ले । प्रसन्नता से तेरा अन्त.करण तरबतर
होकर ही रहेगा ।
अन्त:करण मे समझ आने के बाद भी
यदि मन मे समाधान न प्रगटे, तो समझना ही होगा कि
यह समझ, समझ थी ही नहीं, सिर्फ भ्रमणा ही थी ।
तुझ जैसे समझदार इन्सान के लिये मुझे ऐसी कल्पना
करनी अच्छी नही लगती,
यह बात तू ध्यान मे रखना ।

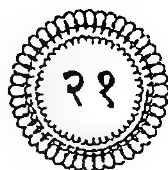
दर्शन,



अब मै तुझे एक अलग अभिगम से एक महत्त्वपूर्ण बात समझा दूॅ।
तू समाज का व्यक्ति है, ऐसा समझकर
मै तेरे साथ बात नहीं करता,
परन्तु तू कुटुब का एक सदस्य है, ऐसा समझकर ही मै तेरे
साथ बात कर रहा हूॅ। समाज के बीच मे रहनेवाले को किस प्रकार
रहना चाहिये, इसके नीति-नियम समाज को बनाने पडे है,
क्योंकि वहॉ ह्दय की नहीं, बुद्धि की प्रधानता है,
परतु
कुटुब मे रहनेवाले को किस प्रकार से रहना चाहिये,
इसकी कोई नियमावलि आज तक किसी कुटुब के बुजुर्ग ने
नहीं बनायी है और इसकी कोई आवश्यकता भी उन्हे महसूस
नहीं हुई है, क्योंकि कुटुब मे ह्दय की प्रधानता है, बुद्धि की नहीं।
वहॉ पर व्यक्तिगत द्दष्टिबिन्दु नहीं,
आत्मीय द्दष्टिबिन्दु ही पेश होता है।
वहॉ पर सत्ता प्रस्थापित किये बिना प्रेम ही अनुशासन करता है।
परिवार का प्रत्येक सदस्य बाल्टी के छिद्र जैसा नहीं बनता,
कि जो कुटुंब के प्रसन्नता के जल को बाहर निकल जाने दे,
वह तो बनता है जमीन के छिद्र जैसा
कि जो कुटुंब के किसी भी सदस्य के किसी भी प्रकार के
दोषो को पी जाता है, पचा जाता है, अपने मे समा लेता है।
मै तुझसे पूछता हूॅ.
तेरे पप्पा के ऐसे अभिगम के बारे मे तेरे मन मे कोई शका है ?
तेरे सुख मे पप्पा को इतनी दिलचस्पी नहीं, ऐसा तुझे लगता है ?
यदि नहीं,
तो एक बात तू निश्चित कर ले कि
जिन मम्मी-पप्पा ने तेरे सुख को सलामत रखने के लिये अपने
ह्दय से ही काम लिया है,
उनके सामने बुद्धि से काम लेने की

गुस्ताखी तू कभी नहीं करेगा ।
तुझे शायद पता न हो, परन्तु
गलतफहमी या उपेक्षा के प्रहार
हथियारो के प्रहारों से बिलकुल कम पीडाकारक नहीं होते ।
तूने पप्पा के लिए
गलतफहमी कम नहीं की,
उनकी उपेक्षा कम नहीं की,
परन्तु इस गलतफहमी के कारण उनके साथ तूने जो
कटु व्यवहार किया है,
उपेक्षा के कारण जो ठडा रुख रखा है,
इसकी उन्हे कितनी वेदना हुई है,
यह जानना हो, तो कभी उनके दिल मे झाककर देखना ।
तू रो पडेगा ।
मम्मी-पप्पा के पत्र
पढ़ने मे किसी पुत्र को असफलता नहीं मिली है,
परन्तु उनके आन्तरमन को
पढ़ने मे तो भले-भले विनयवान पुत्र
भी धोखा खा गये है ।
मै नहीं चाहता कि तू उनके
आतरमन को पढने के प्रयत्न भी शुरू न करे ।
तू उनके दिल की वेदना को समझने के लिए भी
तैयार न हो ।
याद रखना,
दूसरों के हृदय को समझने के लिए जो तैयार नहीं होता,
उसका जीवन पशुजीवन नहीं परन्तु पत्थर जैसा जीवन है ।
दूसरों के हृदय को समझने की मना करनेवाले की यदि यह
पहचान हो, तो उपकारी मम्मी-पप्पा के हृदय को भी समझने के
लिये जो तैयार न हो,
उसकी क्या पहचान दी जाय ?

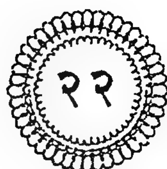
महाराजसाहेब,



आपका पिछला पत्र पढकर ऑखों से इतने ऑसू बहे कि
उन्हे पोछने मे रुमाल को भी सफलता नहीं मिली,
क्योंकि ऑसू रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे ।
महीनो से किनारे पर जमे हुए कचरे को,
नदी मे आनेवाली बाढ
जिस प्रकार एक ही धड़ाके मे अपने प्रवाह मे बहाकर ले जाती है,
उसी प्रकार हृदय मे उमडी हुई संवेदना की बाढ ने
दिल मे बरसों से जमे हुए बुद्धि के कचरे को
एक ही धड़ाके मे साफ कर दिया है ।
आपका पत्र पढने के बाद पल भर का भी विलब किये बिना
मै पहुॅच गया सीधा पप्पा के पास ।
पप्पा कुछ भी समझे, उसके पहले उनकी गोद मे सर रखकर
रोने ही लगा ।
पप्पा तो स्तब्ध हो गये ।
तीस वर्ष के पुत्र का ऐसा करुण रुदन ?
उनके मन मे अमगल की आशंका पैदा हो गयी ।
उनका कठ भर आया ।
'बेटे ! तुझे क्या हुआ है, यह तो बता ।
व्यवसाय मे घाटा हुआ हो, तो चिन्ता मत करना ।
मै अभी बैठा हूॅ ।
किसीने धमकी दी हो, तो भी व्यथित मत होना,
उसे मै देख लूॅगा ।
तेरी तबीयत मे कोई खास गडबड हो, तो भी चिन्ता मत करना ।
बडे से बडे डॉक्टर के पास तेरा इलाज करवाऊॅगा ।
परन्तु तू इस तरह ढीला मत बन,
तुझे जो परेशानी हो, मुझे कह दे ।'
महाराजसाहेब ! पप्पा का प्रेम भरा हाथ मेरे माथे पर
फिरता रहा ।

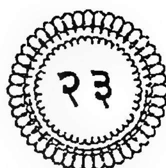
मैने सर ऊँचा किया,
पप्पा के सामने देखा, तो हिल गया ।
पप्पा रो रहे थे ।
'पप्पा ! आप क्यो रो रहे है ?'
'बेटे ! मुझ पर आनेवाले दु खो को सहन करने जितना
मजबूत हृदय आज भी मेरे पास है,
परन्तु
तुझ पर आनेवाले दु:खो को सुनने जितनी भी मजबूती
मुझमे नहीं ।
ऑख तेरी रोती है, हृदय मेरा व्यथित हो रहा है ।
अब तू जल्दी से बता दे, क्या तकलीफ है तुझे ?'
क्या लिखूॅ मै आपको ? सूर्य की गर्मी से
हिमालय पिघल जाय, यह तो समझ मे आता है,
परन्तु
प्रेम के प्रवाह मे
अहंकार का मेरु पिघलने लगे, यह तो आश्चर्य का भी
आश्चर्य लगता है । लेकिन आश्चर्य का तो उस वक्त मुझमे सर्जन हुआ ।
मैने मेरे खुद के रुमाल से पप्पा की ऑख के ऑसू पोछ लिये ।
'पप्पा ! बाहर कुछ बिगड़ा नहीं है,
बिगडा था मेरा अन्त:करण,
बिगडी हुई थी मेरी बुद्धि,
बस उसकी माफी मांगने के लिये अब मै आपके पास आया हूॅ ।
आप मुझे क्षमा कर दीजिये ।'
इतना कहकर पप्पा के प्रति मन मे जितनी भी गाठे थी,
सब उनके समक्ष प्रकट करता ही गया । साबून कपड़े को
साफ करता है, यह अनुभव तो किया है, परन्तु माता-पिता
अपने लाडले को सावधानीपूर्वक साफ भी करते है व प्रसन्नतापूर्वक
माफ भी करते है, यह अनुभव तो जीवन मे पहली बार ही
किया । इस अनुभव से मै स्तब्ध हूॅ ।

दर्शन,



तेरा पत्र पढकर तो मेरी आँखे भी अश्रुओं से भर आयीं ।
रुमाल की गाठ खोल देने मे
कोई पराक्रम नहीं है,
परन्तु हृदय मे व्यक्तियों के प्रति जो गाठे बध गयी हो,
वे तो प्रचड पराक्रम दिखाये बिना खोली नहीं जा सकतीं ।
ऐसा पराक्रम दिखाने के लिये
तुझे लाख-लाख धन्यवाद ।
मै तो यही कहूँगा कि
भविष्य मे ऐसी कोई गाठ न बध जाये, इसके लिए
तू खूब सावधान रहना,
क्योंकि
मन व हृदय के युद्ध मे
कोई हमेशा के लिए विजेता होता ही नहीं ।
आज विजेता बननेवाला हृदय
कल पराजित भी हो सकता है
तो
आज हृदय पर विजय हासिल करने मे सफल बनी हुई बुद्धि
कल हृदय के पास स्वय ही हार मान लेती है ।
सक्षेप मे,
सावधानी सतत अपेक्षित,
जागृति सतत जरूरी है ।
हालाँकि गणित के नियम की तरह यदि समझ को
हृदय मे प्रतिष्ठित कर दिया जाय, तो फिर यह समझ
चाहे जैसी विषम परिस्थिति मे भी
हृदय मे से चलित नहीं होती ।
और मेरे ये ही प्रयत्न है ।
बुद्धि व हृदय की भेदरेखा की ऐसी स्पष्ट समझ
मै तुझमे स्थापित करना चाहता हूँ कि, जो समझ

तेरे जीवन की बहुमूल्य पूँजी बनी रहे ।
चाहे जैसी विकट या विचित्र अवस्था मे भी इस समझ के
सहारे तू योग्य निर्णय लेकर
तेरी प्रसन्नता व समाधि को टिका सके ।
एक महत्त्वपूर्ण बात तू जानता है ?
बुद्धि जो गुण औरों मे चाहती है,
हृदय वे ही गुण स्वयं मे चाहता है ।
बुद्धि गुणो की विरोधी नहीं,
संवेदनशीलता के साथ उसे दुश्मनी नहीं,
प्रेम के साथ उसे वैर नहीं,
परन्तु
वह इतना ही कहती है कि
नम्रता सामनेवाले व्यक्ति मे होनी चाहिये,
उदारता सामनेवाले व्यक्ति को दिखानी चाहिये,
परिस्थिति का विचार सामनेवाले व्यक्ति को करना चाहिये,
प्रेम सामनेवाले व्यक्ति को देना चाहिये,
अन्य का विचार सामनेवाले व्यक्ति को करना चाहिये,
सहनशीलता सामनेवाले व्यक्ति को रखनी चाहिये,
संक्षेप मे,
सद्‌गुण चाहे कोई भी विषयक हो,
वे सामनेवाले व्यक्ति मे होने चाहिये ।
यह मांग है बुद्धि की ।
बुद्धि की यह माग पूरी करने के लिये
जो भी व्यक्ति प्रयत्न करता है,
स्वय के जीवन मे इन गुणों की प्रतिष्ठा किये बिना
औरों के जीवन मे ये गुण खोजने निकल पडता है.
वह व्यक्ति जाने-अनजाने भी अपने मन की प्रसन्नता की
श्मशानयात्रा निकालने की तैयारी कर बैठता है ।
बस सावधान हो जाईये ।

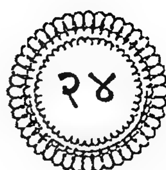


महाराजसाहेब,

आपने तो गजब की बात कर दी ।
बुद्धि का एक ही आग्रह
व एक ही मांग
दूसरे को ही अच्छा बनना चाहिये,
दूसरे को ही अच्छा रहना चाहिये,
दूसरे को ही अच्छा करना चाहिये ।
इस बात पर बहुत गभीरता से विचार किया, तब
पता चला कि मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ है ।
पुत्र के रूप मे मेरे कर्तव्य का विचार करने के बदले
मैने सतत मम्मी-पप्पा के कर्तव्य का ही विचार किया है ।
पप्पा को मेरी भावनाओं को समझने की कोशिश करनी चाहिये,
मम्मी को मेरी पत्नी की गलतियाँ माफ कर देनी चाहिये,
मेरे भविष्य का विचार पप्पा को करना चाहिये,
आवेश मे मुझसे कोई न करने योग्य काम हो जाय, तो
पप्पा को बडा दिल रखकर मुझे माफ कर देना चाहिये ।
मेरे फर्ज का तो कोई विचार ही मैने नहीं किया,
सतत मम्मी-पप्पा के फर्ज का ही विचार किया ।
आज ख्याल आ रहा है कि
मम्मी-पप्पा के साथ मन-मेल न होने मे
जिम्मेवार मेरी यही विचारधारा थी ।
यदि मै बुद्धि की मांग पूरी करने के बदले हृदय की माग
पूरी करने के लिये प्रयत्नशील बना होता,
मेरे स्वय के ही जीवन को कर्तव्य के पालन से वासित
करने की ओर ध्यान केन्द्रित किया होता, तो
परिस्थिति आज से कुछ विपरीत ही होती ।
मम्मी-पप्पा के साथ
मेरा मन-मेल कभी टूटा ही नही होता ।
मेरे व उनके बीच जो कडवाहट पैदा हुई है,

वह न पैदा हुई होती ।
खैर,
जागे तबसे सवेरा
इस न्याय से अब तो इस मामले मे मै धोखा नहीं खाना चाहता,
परन्तु,
आपके साथ इस विषय मे पत्रव्यवहार जब शुरू कर ही
दिया है, तब ऐसा लगता है कि
इस कारण से मन मे घुसे हुए कई तरह के कचरे को
एक बार तो बाहर निकाल ही दूँ,
क्योकि जब तक यह कचरा बाहर नहीं निकलेगा,
तब तक मन सतत अन्दर व्यथित ही होता रहेगा ।
आपकी अनुमति चाहता हूँ ।
दर्शन,
तू खुशी से तेरे मन की शकाये पेश करता जा ।
मेरी समझ के अनुसार समाधान मै तुझे देता रहूँगा ।
परन्तु
एक बात तुझे खास कहना चाहूँगा कि
जीवन मे स्वस्थता टिकाये रखने के लिये
व कुटुंब को प्रेम की दोर से बांधे रखने के लिये
न समझी हुई बातों को भी
म. मे आ गयी है, ऐसा मानकर आगे बढना ही पड़ता है ।
.रूरी नहीं कि मम्मी-पप्पा की हरएक आज्ञा के पीछे रहा हुआ
रहस्य हमारी समझ मे आना ही चाहिये ।
जरूरी नहीं कि उनके प्रत्येक प्रकार के वर्तन के पीछे रहा
हुआ गणित हमारे ख्याल मे आना ही चाहिये ।
नहीं, शरीर के ढेर सारे रहस्यों को समझे बिना भी यदि
शरीर को चलने मे कोई दिक्कत नहीं होती, तो व्यवहार के
अनेक रहस्यो को समझे बिना भी जीवन को चलने मे
कोई दिक्कत नहीं आती । इसमे शका मत करना ।

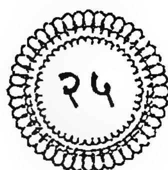
महाराजसाहेब,



आपने तो मेरे मन की ही बात कर दी ।
मै आपसे यही पूछना चाहता था कि
बडो की आज्ञा के पीछे रहे हुए हेतु को समझे बिना,
सिर्फ ये बडे है,
उपकारी है,
आत्मीयजन है,
इसी कारण से उनकी आज्ञा का पालन करते रहने मे
जीवन 'फीका' रह जाय ऐसी सभावना नहीं ?
जीवन 'खोखला' रह जाय ऐसी सभावना नहीं ?
चाहे आपने पूर्व-पत्र मे लिखा है कि न समझी हुई
बातो को भी समझ मे आ गयी है, ऐसा मानकर आगे
चलना ही पडता है,
परन्तु इस अभिगम के स्वीकार के साथ
भला व्यवहार मे जीना व व्यवहार मे रहना सभव है ?
दर्शन,
सरोवर को यदि
नदी मे रूपान्तरित होना हो,
तो उसे दीवार तोड़ने की हिम्मत करनी ही पडती है
और
नदी को यदि
सागर बनना हो, तो
उसे बहते रहकर स्वय को विलीन कर देने की
हिम्मत करनी ही पडती है ।
बस, यही न्याय जीवन के लिए भी समझ लेना है ।
यदि तुझे अशान्ति मे से शान्ति मे जाना है,
तो तर्कनिष्ठ जीवनशैली को तिलांजलि
देने का सत्त्व तो तुझे दिखाना ही होगा
और

यदि तू शान्ति मे से प्रसन्नता मे जाना चाहता है,
तो प्रेमसभर जीवनशैली अपनाने का
पराक्रम तुझे दिखाना ही पड़ेगा ।
मैने कई ऐसे युवकों को देखा है कि
जिन्होने अपनी तर्कप्रधान जीवनशैली से,
शंका-कुशकाप्रधान व्यवहार से
कुटुंबियो के साथ के मीठे सबधो को कडवे जहर जैसा
बना दिया है ।
मै तुझसे ही पूछता हूँ कि
तेरी पत्नी के आगे तू 'दाल मे नमक तो डाला है न ?'
यह शंका व्यक्त करे,
तब तक तो तेरी पत्नी के साथ
प्रेम भरे सबन्ध टिके रहने मे कोई हर्ज नहीं,
परन्तु 'दाल मे ज़हर तो नहीं डाला है न ?'
ऐसी शंका तू व्यक्त करे, फिर भी आत्मीयता भरे सबन्ध
टिके ही रहेगे, ऐसा तू छाती ठोककर कह सकता है ?
बस,
यही बात है मेरी ।
घर की शान्ति स्थिरता के साथ जुडी हुई है
और
जरूरत से ज्यादा स्पष्टीकरण, प्रतिस्पष्टीकरण,
घर की स्थिरता को हिलाकर रख देते है और जहाँ
स्थिरता हिल जाती है, वहाँ से शान्ति रवाना हो जाती है ।
मै तुझसे इतना ही कहूँगा कि
आँख से हृदय तक जानेवाला रास्ता यह है कि, जो
बुद्धि से होकर नहीं गुजरता
और जो रास्ता बुद्धि से होकर गुजरता है,
वह रास्ता बहुधा हृदय तक नहीं पहुँचता ।
मेरे कहने का तात्पर्य तू समझ गया होगा ।

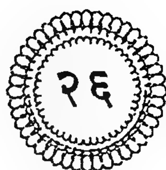
महाराजसाहेब,



आपकी बात मै समझ गया । जीवन मे
तर्क को ऐसी प्रधानता नहीं देनी चाहिये कि जिसके कारण
प्रेम के सबन्धों मे दरार पड़ जाय,
कौटुबिक भावना बिखर जाय,
सफलता मिल जाय, परन्तु प्रसन्नता छीन जाय,
पदार्थ के नुकसान से बचा जाय, परन्तु
प्रेम का नुकसान हो,
विजय मिल जाय, परन्तु विषाद छोडती जाय,
परन्तु फिर भी एक बात पूछूँ ?
प्रसन्नता महत्त्वपूर्ण होने पर भी, अच्छी होने पर भी
बाजार मे सफलता की जो बोलबाला है,
वह देखते हुए मन कई बार प्रसन्नता को गौण बनाकर
सफलता को प्रधानता दे बैठता है और
लक्ष्य के स्थान पर जहाँ सफलता आ जाती है, वहाँ
बुद्धि आगे आ जाती है
और
प्रेम दूर धकेल दिया जाता है ।
प्रसन्नता की कुर्बानी से
सफलता मिलने पर भी अन्तर मे
उसकी ऐसी कोई व्यथा नहीं होती ।
इसके लिये आपका मार्गदर्शन चाहता हूँ ।
दर्शन,
दुनिया मे सुख दो प्रकार के है ।
एक सुख है अभिप्राय का और
दूसरा सूख है -अनुभूति का ।
तुझे प्राप्त हुए जिस सुख, पदार्थ व सफलता
की प्रशसा, दुनिया करती है,
वह है- अभिप्राय का सुख

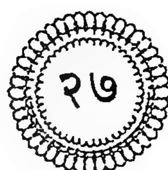
और

तू स्वय सतत जिस स्वस्थता व मस्ती का अनुभव कर रहा है,
वह है, अनुभूति का सुख ।
यदि मन में अभिप्राय के सुख का ही आकर्षण है
तो निश्चित ही समझ रखना चाहिये कि
वहाँ प्रेम काम आनेवाला नहीं ।
प्रेम की बुनियाद पर खड़े रहनेवाले कोई भी
सद्गुण काम आनेवाले नहीं ।
क्योंकि करोडपति बने बिना,
गाड़ियाँ रखे बिना,
आकर्षक फर्निचरवाले बंगले के मालिक बने बिना,
समाज मे प्रथम स्थान पर रहे बिना,
विशिष्ट सामग्रियाँ घर मे लाये बिना अभिप्राय का सुख नहीं मिलता
और ऐसा सुख
सवेदनशीलता, नम्रता, सहृदयता, विनयशीलता,
क्षमाशीलता, आदि सद्गुणों के आधार पर नहीं मिलता,
यह सुख तो मिलता है छल-प्रपच के रास्ते पर,
आवेश और आक्रमण के रास्ते पर,
बुद्धि की चालबाजी के रास्ते पर
वैर व हिसा के रास्ते पर,
कपट व छल के रास्ते पर
एक प्रहार मे दो टुकडे करने के रास्ते पर,
सम्बन्धों के प्रति लापरवाह बनने के रास्ते पर,
मित्रों को दुश्मन बनाने के रास्ते पर
धर्म व धर्मी की अवगणना करने के रास्ते पर ।
दर्शन,
जगत का बहुजनवर्ग तो उलझा हुआ है इस अभिप्राय के सुख में ।
तेरा स्वय का निरीक्षण करके देखना ।
कहीं तेरा नबर इसीमे तो नहीं ?



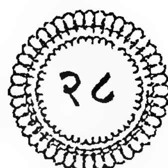
दर्शन,
चाहे जैसी विषम परिस्थिति का निर्माण हो जाय,
व्यक्तियो के चाहे जैसे विचित्र बर्ताव का अनुभव हो,
चाहे जैसे विकट सयोग उपस्थित हो जाये,
फिर भी
चित्त की प्रसन्नता बनी रहे,
मन की मस्ती सहज मे ही टिकी रहे,
मन दुर्भाव या, दुर्ध्यान का शिकार होने से बच जाय,
यह है अनुभूति का सुख ।
इस सुख का अनुभव व्यक्ति को स्वय को ही होता है ।
इसके बारे मे न तो दुनिया जानती है
और न ही पडौसी ।
अरे । कभी-कभी तो स्वय के आत्मीयजन भी नहीं जान पाते
और यदि उन्हे मालुम हो भी जाय,
तो भी अनुभूति के सुखवाले को इसकी कुछ नहीं पडी होती ।
वह तो सदा अपनी मस्ती मे रहता है ।
हॉ, इस सुखका अनुभव होता है
प्रेम के मार्ग मे,
सरलता व नम्रता के मार्ग मे,
ठगे जाने की तैयारी रखने के मार्ग मे,
सवेदनशीलता को चालकबल बनाने के मार्ग मे,
सहिष्णुता व सहनशीलता के मार्ग मे
सबन्धो को बनाये रखने की इच्छा के मार्ग मे,
सक्षेप मे,
मन उद्विग्न है और
जगत स्तब्ध है ।
यह है अभिप्राय का सुख
और
जगत अन्धेरे मे है व

मन प्रसन्न है,
यह है अनुभूति का सुख ।
तेरी भाषा मे समझाऊँ ?
तूने पॉव मे पहने हुए जूते तेरे पॉव मे चुभ
रहे है फिर भी आसपास वाले तेरे जूतो की तारीफ करते
नहीं थकते ।
यह है अभिप्राय का सुख ।
और तेरे निकट से गुजरनेवाले किसीकी भी नजर
तुझ पर नहीं पड़ती फिर भी
नगे पॉव भी पूरी प्रसन्नता के साथ
तू सड़क पर चल रहा है ।
यह है अनुभूति का सुख ।
पिछले पत्र मे तूने लिखा था न कि
'प्रसन्नता महत्त्वपूर्ण होने पर भी
बाजार मे सफलता की ही बोलबाला है..' इसका यही अर्थ है ।
अनुभूति का सुख महत्त्वपूर्ण
होने पर भी बाजारमे अभिप्राय के सुख की ही बोलबाला है ।
अभिप्राय का सुख ?
या अनुभूति का सुख ?
दोनो मे से किसे चुनना, यह तो तेरे हाथ मे है ।
एक बात बता दूँ ?
अनुभूति के सुख को लक्ष्य बनाकर
जीवनव्यवस्था बनानेवाले को
अभिप्राय का सुख न ही मिले,
ऐसा कोई कायदा नहीं, परन्तु
अभिप्राय के सुख को ही लक्ष्य बनाकर
जीवनव्यवस्था बनानेवाले को अनुभूति का सुख मिलने की
बिलकुल सभावना नहीं ।
गेद तेरे मैदान मे ही है ।



तीस वर्ष की जिदगी मे पहली बार सुख के
ये दो भेद जानने व समझने मिले ।
मै तो स्तब्ध हो गया हूॅ ।
जीवन के बीते हुए बरसो की ओर
नज़र करने पर ऐसा महसूस होता है
कि समझ व शक्ति के तमाम वर्ष
सिर्फ अभिप्राय का सुख पाने के पीछे बरबाद कर डाले है ।
इस सुख मे
जो भी प्रतिबन्धक बने है,
उन सबके साथ सबन्ध तोडने मे, मैने पल भर का भी
विलब नहीं किया ।
आज पता चल रहा है कि
दिल से दी गयी मम्मी-पप्पा की अच्छी व सच्ची
सलाह भी मुझे क्यो अच्छी नहीं लगी ?
उनकी सलाह मे मुझे मेरे हित के दर्शन क्यो नही हुए ?
ऐसी सलाह देनेवाले मम्मी-पप्पा उपकारी क्यो नहीं लगे ?
चाहे, उस सलाह पर अमल करना
मुझे करीब-करीब अशक्य लगता था,
परन्तु उस सलाह मे मुझे अमृत के दर्शन न होकर विष के
दर्शन क्यो हुए है ?
वह सलाह देनेवाले मम्मी-पप्पा उपकारी लगने के बदले
दुश्मन क्यो लगे है ?
इसका एक ही कारण है -
सिर्फ अभिप्राय के सुख की लालसा ।
न मेरी अनुभूति के सुख की चिन्ता या
न ही मम्मी-पप्पा की अनुभूति के सुख की चिन्ता ।
सामनेवाले का दिल समझने की तो कोई बात ही नहीं,
सामनेवाले की प्रसन्नता खडित न हो, इसकी
सावधानी रखने की कोई बात ही नहीं ।

अपने आक्रमण से फूल कुचला गया है, यह जानने
पर भी पत्थर की कठोरता थोडी भी नहीं
घटती, उसी प्रकार
मेरे गलत बर्ताव से उपकारी मम्मी-पप्पा के
नाजुक दिल के टुकडे-टुकडे हो गये है, यह जानने पर भी
मेरी कठोर मनोवृत्ति
मैने थोडी भी कम नहीं की है ।
इन सबके मूल मे मुझे एक ही बात नजर आती है ।
वह है - जीवन के लक्ष्यस्थान मे रहा हुआ अभिप्राय का सुख ।
शान्त चित्त से विचार करने पर मुझे ऐसा लगता है कि
यदि जीवन मे
अभिप्राय का सुख ही केन्द्रस्थान पर है
तो समस्या ही समस्या है
और जीवन मे
यदि अनुभूति का सुख ही प्रधान बन जाय,
तो प्रसन्नता ही प्रसन्नता है ।
हॅसना तो आज मुझे खुद पर आता है । आभूषण के बदले मे
साबून खरीदने की गलती इस जिदगी मे मैने कभी नहीं की है ।
चार आने का खोया हुआ रूमाल वापिस पाने के लिये
चार रुपये का रिक्शे का खर्च करने की गलती
मैने आज तक कभी नहीं की है ।
और
सफलता हासिल करने के लिये
प्रसन्नता को गिरवी रखने की मूर्खता
आज तक मै सतत करता ही रहा हूँ ।
'ना जिसे उगरना हो, उसे कौन उगारे ?
भॅवर से बचाओ, तो डूबे जाकर किनारे ।'
किसी शायर की ये पक्तियॉ क्या मुझ जैसे मूर्ख को ही
नज़र के समक्ष रखकर लिखी गयी होगी ?

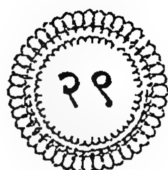


दर्शन,

आनन्द तो मुझे इस बात का हुआ है कि तीस वर्ष की भर
जवानी की वय मे पहुँचने पर भी भूल कबूल करने की नम्रता
तू रख पाया है ।
एक अपेक्षा से देखा जाय, तो
भूल न ही करना जितना कठिन है,
उससे अधिक कठिन तो है-भूल करने के बाद उसे
स्वीकार लेना ।
हॉ, एक बात जरूर कहुँगा कि यदि पुनरावर्तन न हो तो
बडी भूल भी माफ हो सकती है
और
यदि पुनरावर्तन जारी ही रहे, तो
छोटी-सी भूल भी भयकर साबित हो सकती है ।
इतने वर्षो से जो भूल तू करता आया है,
वह अब भी जारी न रहे,
इसकी खास सावधानी रखना ।
हॉ,
एक वास्तविक्ता सतत नजर के सामने रखना कि
बुद्धि का काम तो पत्थर फेकने का ही है ।
यदि तेरा मन मिट्टी के घडे जैसा है, तो
उसे फूटने मे देर नहीं लगेगी
परन्तु
तेरे मन को यदि तू सागर जैसा बना ले,
तो बुद्धि के चाहे जैसे पत्थर को भी
वह अपने मे समाये बिना नहीं रहेगा ।
यह बात तुझे इसलिये लिखनी पडी है कि
युवावस्था बुद्धि को अनुभव का पर्याय मान लेने की
गलती कर बैठती है ।
'मेरे पास तीक्ष्ण बुद्धि है

इसलिये मै बहुत अनुभवी हूँ'
ऐसी मान्यता मे उलझे बिना नहीं रहती ।
परन्तु वास्तविक्ता यह है कि
तीक्ष्ण बुद्धि होनी अलग बात है
और
ढेर सारे अनुभव होना अलग बात है ।
पर्वत पर जाने के रास्तो का नक्शा हाथ मे होना
एक अलग बात है
और पर्वत के उन रास्तो पर से हो जाने का
अनुभव होना अलग बात है ।
तू बराबर समझ सकता है कि
पर्वत पर जिसे जाना ही है,
वह उसके अभिप्राय को इतना महत्त्व नहीं देता
जिसके हाथ मे नक्शा है,
परन्तु पर्वत पर चढकर आने का जिसे अनुभव है,
उसके अभिप्राय को महत्त्व देता है ।
मम्मी-पप्पा के साथ तेरे व्यवहार के भूतकाल पर नजर डालकर देख ।
तुझे ख्याल आ जाएगा कि
अनुभव के सामने बुद्धि को रखकर तूने सघर्ष ही किये है ।
तेरे मन को सागर जैसा बनाकर
मम्मी-पप्पा की ओर से किये गये
बुद्धि के सूचनों को अन्दर समाने के बदले
मन को घड़े जैसा बनाकर
तू मन से सतत टूटता ही चला आया है ।
इसीका यह दुष्परिणाम आया है कि
मम्मी-पप्पा के साथ तेरा वर्तमान मे सहवास
मजारूप न बनकर सजारूप
बन गया है और बन रहा है ।
अब तो चेत ।

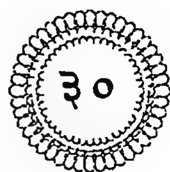
महाराजसाहेब,



मेरे दु खदायक वर्तमान के विषय मे आपका निदान एकदम
सही है। सम्यक् मार्गदर्शन पाने के लिये आपके साथ
पत्रव्यवहार शुरू किया ही है,
तो मुझे स्पष्ट कहने दीजिये कि
मुझे मम्मी व पप्पा, दोनो 'बुद्धू' ही लगे है।
उन्होने अक्ल गिरवी रख दी हो, ऐसा ही मुझे लगा है।
व्यवहार की एक भी बात मे उनकी सलाह लेने योग्य है या
उनकी सलाह अमल करने योग्य है, ऐसा मुझे कभी लगा ही नहीं।
उनका सगा पुत्र होते हुए उनके प्रति यदि मेरी यह मान्यता हो,
तो मेरी पत्नी का तो पूछना ही क्या ?
मेरी पत्नी के सामने मै स्वय ही मेरे मम्मी-पप्पा को नीचा
दिखाने का प्रयास करता होऊँ, तो मेरी पत्नी
मम्मी-पप्पा की मान-मर्यादा रखेगी ही कहाँ से ?
आज लग रहा है कि
इस तमाम गलत मान्यता व गलत व्यवहार के पीछे
जिम्मेवार था-मुझे चढा हुआ बुद्धि का नशा।
क्या बताऊँ आपको ?
कभी-कभी तो मैने घर आए हुए मेहमानो के सामने
मम्मी-पप्पा को ऐसी बाते करते हुए सुना है कि
'अब तो भगवान मौत दे दे, इसीका इन्तजार कर रहे है।
पुत्र नग्न हो, उसे तो फिर भी सभाला जा सकता है,
परतु निर्लज्ज बन जाय, तब क्या किया जाय ?
इस घर मे अब हम 'ज्यादा के' गिने जाते है।
नये फर्निचर के लिए इस घर मे पूरी जगह है, परन्तु पुराने
माँ-बाप के लिये कोई जगह नहीं।'
ऐसी कई सदर्भ बिना की बाते मेहमानो के आगे करते हुए
मम्मी-पप्पा को मैने सुना है,
और इतना सुनने के बावजूद भी मैने अपनी गलतियो को देखने का

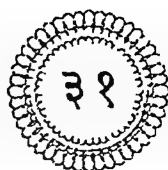
प्रयास तो नहीं किया, उलटे मम्मी-पप्पा के प्रति द्वेष को और मजबूत बनाया है ।
उनके साथ बर्ताव मे तुच्छता ज्यादा दिखायी है,
उनके साथ बोल-चाल मे कर्कशता ज्यादा मिलायी है,
उन्हे मिलनेवाली सुविधाओ मे कटौती की है ।
ऐसे गलत व्यवहार के लिये मुझे
पश्चात्ताप भी होता है,
फिर भी
मन मे एक शका रहा ही करती है,
जो आपके सामने पेश करता हूँ ।
जिन्हे भी हम उपकारी मानते हो,
उनमे रहे हुए दोषो के बारे मे
हम कोई टीका-टिप्पणी करे ही नही ?
उनमे रहे हुए दोषो के कारण
उन्हे व हमे जो नुकसान हो रहा है,
उसे गभीरतासे मन पर लिया ही न जाय ?
क्या यह सभव है ?
कपडे पर पडा हुआ दाग हम देखे बिना
नहीं रहते,
दीवार मे पडी हुई दरार हमारी नज़र मे
आए बिना नहीं रहती
घर के एक कोने मे रहा हुआ विष्टा का कण
भी हमारे ध्यान मे आए बिना नहीं रहता,
तो फिर
उपकारी के जीवन मे रहे हुए दोष
हमारे ध्यान मे आये ही नहीं,
हमारी अरुचि के विषय बने ही नहीं, यह संभव है
भला ?
यह बताईयेगा ।

दर्शन,



तेरा प्रश्न तो लाजवाब है, परन्तु
इसका उत्तर देने से पहले मै तुझसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ ।
पहले तू उसका उत्तर दे दे, बाद मे
मै तेरे प्रश्न का उत्तर दूँगा ।
मेरा प्रश्न यह है-
मै भगवान नही, यह मै तो जानता ही हूँ,
परन्तु तू भी यह जानता ही है न ?
'भगवान नहीं', इसका अर्थ क्या ?
यही कि अभी भी मुझमे दोष भरे पडे है ।
क्रोध भी है, तो ईर्ष्या भी है,
निन्दा की वृत्ति भी है, तो वैरवृत्ति भी है,
और ऐसा भी नहीं है कि
ये दोष अन्तर मे सिर्फ दबे हुए ही पडे है ।
नहीं,
किसी न किसी स्वरूप मे अलग-अलग निमित्तो मे
वे प्रकट हो ही रहे है ।
मै तुझसे ही पूछता हूँ ।
मुझमे रहे हुए दोष आज तक तूने कितनी बार देखे ?
ये दोष देखकर तूने कितनी बार मुझ पर दुर्भाव किया ?
इन दोषो के कारण तूने मेरे साथ कितनी बार सघर्ष किया ?
इन दोषो के कारण तूने मेरे साथ सपर्क कितनी बार कम किया ?
इन दोषो के कारण मेरे साथ के सबन्धो पर पूर्णविराम रखने
का विचार तूने कितनी बार किया ?
शायद इन सब सवालो का जवाब तू 'ना' मे ही देगा ।
तू ऐसा ही कहेगा कि
मैने आपमे रहे हुए दोष देखे ही नहीं ।
यदि कभी दिख भी गये हो, तो आपके प्रति
दुर्भाव तो एक भी बार

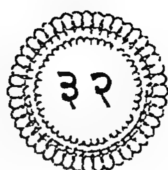
नहीं किया
आपके साथ सघर्ष मे उतरनेका विचार
तक मुझे स्पर्श नही कर पाया है
आपके साथ का सपर्क मैने कम नहीं किया,
आपके साथ के मेरे आत्मीयता भरे सबन्ध मे मैने
तनिक भी कमी नहीं आने दी है ।
यदि तेरा यही जवाब है,
तो मै तुझसे पूछना चाहता हूँ कि पिछले पत्र मे तूने जो दलील
उठायी है कि 'कपडे पर पड़ा दाग,
दीवार की दरार,
घर मे रही हुई विष्टा जैसे दिख ही जाती है,
उसी प्रकार उपकारी मे रहे हुए दोष दिख ही जाते है व
दिखते ही अरुचि के विषय बन जाते है, इस दलील का मेरे
विषय मे तेरा क्या जवाब है ?
दर्शन,
तुझे कहना ही होगा कि
मेरी ऑखो के सामने सतत मुझ पर आपके द्वारा किये गये
उपकार ही दिखायी दे रहे हैं ।
मुझे शैतान मे से इन्सान आपने बनाया है ।
इन्सान के रूप मे मुझमे सज्जनता आपने प्रगटायी है ।
जहाँ ऋणस्मरण का ही सातत्य हो,
वहाँ दोषदर्शन तो हो ही कहॉ सकता है ?
आपमे रहे हुए दोष शायद आपके लिये विचारणीय
होगे या चिन्ताजनक होगे,
परन्तु मेरे लिये तो
मुझ पर आपके उपकार ही स्मरणीय है ।
मै तो उस शायर की तरह यहॉ तक कहूँगा कि
'आपकी कसम, मुझे तो है इतनी श्रद्धा आप पर,
आप यदि श्राप भी देगे तो वह वरदान वन जाएगा ।



दर्शन,
'जहाँ ऋणस्मरण, वहाँ दोषदर्शन नहीं, यदि
तेरा यह अभिगम मेरे विषय मे है, तो यही अभिगम
मम्मी-पप्पा के विषय मे क्यो नहीं ?
उनके भी तुझ पर उपकार तो है ही न ?
उनका भी तुझ पर ऋण तो है ही न ?
तो फिर
उनकी स्मृति मे उनमे रहे हुए दोषो की विस्मृति क्यो नहीं ?
एक महत्त्वपूर्ण बात बताऊँ ?
बाजार मे
सत्यदर्शन का आग्रह फिर भी शायद बराबर है,
परन्तु
जहाँ प्रेम व खून के रिश्ते है,
अथवा जहाँ ये रिश्ते टिके हुए है,
वहाँ तो शुभदर्शन अथवा स्नेहदर्शन ही बराबर है ।
मै तुझसे पूछता हूँ-
बचपन मे कभी तू विष्टा से गदा हुआ होगा
तब मम्मीने सिर्फ सत्यदर्शन ही किया था या स्नेहदर्शन भी ?
तुझे कहना ही होगा कि
सत्यदृष्टि के साथ मम्मीने शुभदृष्टि अथवा स्नेहदृष्टि भी
रखी ही होगी,
नहीं तो पूर्ण वात्सल्य के साथ
मम्मी ने तुझे साफ कैसे किया होगा ?
ऐसी अवस्था मे गाल पर तमाचा मारने के बजाय
मम्मीने तुझे स्नेह से कैसे नहलाया होगा ?
दर्शन,
मै तुझसे यही कहता हूँ कि
ठीक यही अभिगम तू भी अभी आत्मसात् कर ले ।
पप्पा की उम्र है

उनके कपडे बिगड जाते है ।
मम्मी की उम्र है,
उनके हाथ मे से थाली गिर जाती है ।
पप्पा की ऑख मे मोतिया है,
चलते-चलते वे गिर पडते है ।
मम्मी को कान से बहुत कम सुनायी देता है ।
भोजन करने के लिये तेरी पत्नी के दो-दो बार आवाज देने पर भी
वे जहॉ बैठी है, वहीं बैठी रहती हैं ।
पप्पा के पॉव कमजोर हो गये है ।
वे तेरी रफ्तार मे तेरे साथ चल नहीं सकते ।
मम्मी का मन कमजोर हो गया है ।
चाय पी ली, फिर भी भूल जाने से फिर से चाय मॉग बैठती हैं ।
पप्पा के मुँह से लार टपक रही है,
उनके कपडे बिगड गये है ।
मम्मी का शरीर एकदम अशक्त बन गया है,
वे दिन भर सोयी रहती है ।
क्या बताऊँ तुझे ?
आज मम्मी-पप्पा के चेहरे पर जो झूर्रियॉ दिख रही है
उसी चेहरे पर कल खिलखिलाहट थी, हॅसी थी ।
आज आधी रोटी भी मुश्किल से पचा पानेवाले मम्मी-पप्पा
के पाचनतंत्र ने कभी बारह-बारह रोटियॉ भी पचायी हैं ।
आज आधे घंटे पहले घटी हुई घटना को भूल जानेवाला
मम्मी-पप्पा का मन, किसी जमाने मे बीस-बीस वर्ष पूर्व
घटी घटना को याद रखने मे भी समर्थ था ।
तुझे एक ही काम करना है । सत्यद्दष्टि ही नही, स्नेहद्दष्टि भी
रखनी है । स्नेहद्दष्टि मम्मी-पप्पा के दु.ख की अवगणना
नहीं करने देगी और उनमे रहे हुए दोष नहीं देखने देगी ।
याद रखना, स्नेहदर्शन एक ऐसा मोड है, जो कई टेढी
वस्तुओं को भी सीधी कर देता है ।

महाराजसाहेब,



हृदय की ऊर्मियो को व्यक्त करने के लिए मेरे पास कोई
शब्द नहीं । लबे अरसे से हल न हुआ सवाल
अचानक हल हो जाय, तो खुशी से एक गणितज्ञ
जैसे झूम उठता है,
उससे कईगुणा आनन्द से मै झूम उठा हूँ, आपका
पत्र पढकर ।
बरसो से जिस समस्या का समाधान ही नहीं हो रहा था,
वह समाधान आपके पिछले पत्र से मिला है ।
सत्यदर्शन करने की छूट है,
परन्तु उसकी नींव मे स्नेहदर्शन होना ही चाहिये ।
सत्यदृष्टि मान्य है ।
परन्तु वह स्नेहदृष्टिपूर्वक की ही होनी चाहिये ।
आज तक मै यही मानता था कि
जीवन मे मिथ्यादर्शन नहीं, परन्तु
सत्यदर्शन होना चाहिये ।
बस, इसी मान्यता के आधार पर मै जीवन जीता चला आया हूँ ।
मम्मी-पप्पा के अशोभनीय वर्तन को,
कर्कश, कठोर वचनोच्चार को सत्यदर्शन का लेबल
लगा-लगाकर उनके साथ सघर्ष करता ही रहा,
उनके साथ सम्बन्ध बिगाडता ही रहा ।
काश,
इस सत्यदर्शन मे मैने स्नेहदर्शन का प्रवेश करा दिया होता,
तो सघर्ष होने या
सबन्ध बिगडने का सवाल ही नहीं उठता ।
आपका अत्यन्त आभार मानता हूँ कि
आपने मुझे अत्यन्त प्रभावशाली मार्गदर्शन देकर
उपकारी के साथ सबन्धविच्छेद के सभवित
अपाय मे से उबार लिया ।

प्रश्न तो यह उठता है कि
प्रसन्नता की अनुभूति के रास्ते को जानने पर भी
व महसूस करने पर भी इन्सान
आवेश के रास्ते की ओर कदम क्यो बढाता होगा ? स्नेहदर्शन
के बिना का सत्यदर्शन आवेश कराता है,
ऐसा अनुभव होने पर भी इन्सान सत्यदर्शन के लिए
लडने के लिए क्यो तैयार होता होगा ?
दर्शन,
इसका जवाब मै दूँ, उससे पहले किसी शायर की
ये पक्तियाँ पढ ले ।
'हिम पिघल गया व समा गया झरने के गान मे,
पर्वत खड़े रह गये झूठे गुमान मे ।'
जो पिघलने के लिए तैयार होता है, उसे किसीमे भी
समाने मे या घुलने मे देर नहीं लगती और
जो पत्थर की तरह खड़ा ही रहता है,
वह किसीमे भी घुल-मिल नहीं सकता ।
तूने जो प्रश्न पूछा है, उसका जवाब इसीमे है ।
बुद्धि एक बार जिस रास्ते पर आगे बढ़ती है,
उस रास्ते मे कष्ट का अनुभव होने पर भी वह
वहाँ से हटने का नाम नहीं लेती ।
क्या बताऊँ तुझे ?
इस दुनिया मे आज तक हो चुके व
वर्तमान मे हो रहे युद्धो व संघर्षो के
मूल मे तुझे एक ही बात नजर आएगी ।
स्नेहदृष्टि व शुभदृष्टि का सर्वथा अभाव ।
मै चाहता हूँ कि अब से इस मामले मे तू बिलकुल धोखा न खाय ।
जिदगी को पीछे से समझने की मनाही नहीं है,
परन्तु
जिदगी जीनी तो आगे से ही है, यह बात तू सतत याद रखना ।



दर्शन,
सत्यदर्शन-शुभदर्शन अथवा स्नेहदर्शन की
बात जब निकली ही है, तो
सिर्फ पद्रह दिन पूर्व एक युवक अपने जीवन की जो
घटना मुझे कहकर गया, वह मै तेरे आगे पेश करता हूॅ।
चित्र एकदम स्पष्ट हो जाएगा।
सारा प्रसग उस युवक के ही शब्दों मे पेश करता हूॅ।
"महाराजसाहेब,
करीब नौ वर्ष पूर्व पिताजी चल बसे।
हम अनाथ हो गये, मॉ विधवा बन गयी।
आवश्यक व्यावहारिक कार्य निपटाकर हम तीनो भाई
इकट्ठे हुए।
मॉ के बारेमे विचार-विमर्श चला
'मॉ किसके यहॉ रहे ?
मॉ का निजी खर्च कहॉ से निकाले ?
आखिर मे यह निर्णय लिया गया कि तीनो भाई हर महीने
मॉ को तीन-तीन हजार रुपये देगे।
इस प्रकार प्रति माह मॉ को नौ हजार रुपये देना
शुरू हुआ।
इसके लिये मॉ को कोई असतोष था या नहीं यह तो हम नहीं जानते,
क्योकि जब पिताजी जीवित थे, तब हमने मॉ को कभी भी
किसी बात की फरियाद करते हुए सुना नहीं था।
और हम तीनो भाई तो यही समझते थे कि
अकेली मॉ को हम हर महीने नौ हजार रुपये देते है,
इतने पैसे तो मॉ के लिए काफी है,
शायद मॉ की जरूरत से भी यह रकम अधिक ही है,
इसीलिए मॉ को नौ हजार से सतोष है या असतोष
यह पूछने की जरूरत ही नहीं।
असतोष होगा, तो मॉ हमे स्वय ही कह देगी।

परन्तु
एक दिन दुपहर मे मै आराम करके उठा
और अचानक मेरे मन मे एक विचार आया।
जिस मॉ ने
आज तक मेरे पास से जितना लिया है,
उससे अधिक ही दिया है, बदले की अपेक्षा के बिना दिया है,
देकर जो भूल भी चुकी है,
उसी मॉ के लिये
हम तीनो भाईयो ने नौ हजार का मासिक वेतन निश्चित कर लिया।
ये नौ हजार भी उसकी जरूरत से ज्यादा है,
इसका निर्णय भी मॉ से न पूछकर हमने स्वय ही कर लिया।
हम पर उसके द्वारा किये गये अनन्त उपकारो को हमने नौ हजार मे बॉध दिया।
वह तो धरती जैसी है। जो भी तकलीफे आयेगी, उन्हे वह
सहन करती ही जाएगी, परन्तु हमारी कृतज्ञता का क्या ?
हमारी खानदानी का क्या ?
दूसरे दो भाईयो को जो करना हो, वे करे, परन्तु
मुझे स्वय तो इस गणित को बदलना ही होगा।
बस, इसी विचार से बिछौने मे से उठकर अलमारी खोली।
रोकडे पाच लाख रुपये निकाले।
लेकर पहुँचा सीधा छोटे भाई के घर, जहॉ मॉ रहती थी।
मॉ के पॉवो मे गिरकर पाच लाख रुपये उसके चरणो मे धर दिए।
'अरे ! इतने सारे रुपये किसलिये ?' मॉ ने पूछा।
'इतने समय तक की हुई भूल के प्रायश्चित्त के।
ये पैसे तेरी इच्छानुसार खर्च कर लेना
और ये भी कम पडे, तो और मॉग लेना।
आज से तेरा नौ हजार का वेतन बन्द। पैसे कमाने मे हमने
कोई मर्यादा निश्चित नहीं की है, तुझे पैसे देने के लिये हमने
जो मर्यादा निश्चित की है, वह भी आज से बन्द',
इतना कहते हुए मै रो पडा।

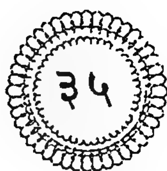
दर्शन,



इस घटना की बात करते-करते वह युवक तो मेरे आगे
रो पडा, परन्तु उसकी बात सुनते-सुनते
मेरी ऑख मे भी ऑसू आ गये ।
कैसी उदात्त विचारधारा ।
कैसा सुदर कृतज्ञभाव ।
कैसा सुदर शुभदर्शन व स्नेहदर्शन ।
'मॉ विधवा हो गयी
इसीलिये हमे उसे नौ हजार रुपये देने चाहिये'
इस निर्णय के मूल मे था सत्यदर्शन,
जब कि
'मॉ के द्वारा हम पर किए गए अनन्त उपकारो के आगे
हम उसे जो भी दे, वह कम ही है'
इस निर्णय के मूल मे था स्नेहदर्शन ।
मै तुझे यही सलाह देना चाहता हूॅ ।
सत्यदर्शन को ही जीवन का चालकबल बनाकर तूने बहुत
कष्ट सहा है व संक्लेश पाया है,
अब स्नेहदर्शन को जीवन का चालकबल बना दे ।
तू गजब की प्रसन्नता का अनुभव कर सकेगा ।
महाराजसाहेब ।
क्या लिखूॅ मै आपको ?
पिछले पत्र मे आपके द्वारा लिखी गयी उस युवक की सत्य घटना
अभी भी स्मृतिपट पर छायी हुई है ।
सत्यदर्शन का फल यदि नौ हजार था
व स्नेहदर्शन का फल यदि पॉच लाख था,
तो
मै आपसे यह पूछना चाहता हूॅ कि
बडे भैया के घर मे न रहते हुए मम्मी-पप्पा आज
मेरे साथ रहते है, उनके पास से मै हर माह हजार-हजार

रुपये मम्मी-पप्पा को खिलाने-पिलाने के लेता हूँ, यह किसका फल है ?
आपको शायद पता नहीं होगा, परन्तु मेरी शादी के बाद
एक बार बडे भैया ने मुझे बुलाकर कहा कि
'देख, अब तेरी शादी हो गयी है ।
मम्मी-पप्पा का ध्यान इतने वर्षों तक मैने रखा है,
उनका सारा खर्च मैने ही उठाया है,
उनके रूखे स्वभाव को मैने व तेरी भाभी ने इतने सालो तक
निभाया है,
उनकी अनावश्यक दखलबाजी बडा दिल रखकर हम दोनो ने
निभायी है ।
अब तेरा यह फर्ज है कि
तू मम्मी-पप्पा को लेकर अलग रहने चला जा ।
मम्मी-पप्पा तेरे साथ आयेगे, तो मुझे थोडी राहत मिलेगी
और तेरी भाभी भी बरसो के बाद चैन की साँस लेगी ।
महाराजसाहेब ! शायद आपको यकीन नहीं होगा कि उस वक्त
मैने बडे भैया से कहा था कि· 'मेरी तरह मम्मी-पप्पा के लिए
भी हम अलग फ्लेट खरीद ले तो ?
शान्ति से अलग रहेगे व भगवान की माला जपेगे ।'
बडे भैया को मेरी इस ऑफर मे कुछ भी अनुचित
नही लगा । रात को उन्होने मम्मी-पप्पा से बात की ।
यह सुनकर पप्पा को सदमा पहुँचा । वे इतना ही बोले कि'
'तुम लोग इस उम्र मे हम दोनों को अलग रहने भेजते हो,
इससे बेहतर तो यह है कि तुम्हारे हाथो ही हमे शरीर से अलग
कर दो न ?
इतन बोलते हुए पप्पा रो पडे । हम लाचार थे ।
हमे पप्पा के ऑसुओ की जितनी शर्म नहीं थी,
उतनी समाज की शर्म थी ।
मम्मी-पप्पा के लिए स्वतंत्र फ्लेट लेने का विचार मुलतवी रखा ।
इस शर्मजनक प्रसग के बाद जो कुछ हुआ, वह अगले पत्र मे ।

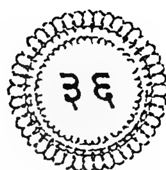
महाराजसाहेब,



उस वक्त तो उस बात को हमने वहीं बन्द कर दिया
परन्तु
दूसरे दिन हम दोनो भाई अकेले मिले ।
काफी विचार विमर्श के बाद हम इस निष्कर्ष पर आये कि
मै अलग रहने जाऊँ और
मम्मी-पप्पा को मेरे साथ ले जाऊँ ।
आखिर उन्हे मेरे साथ रखने से मुझ पर पडनेवाले
खर्च के बोझ की चर्चा चली ।
मैने यह बात रखी कि हम दोनो आधा-आधा
खर्च उठा ले ।
लेकिन बडे भैया ने ऐसा कहा कि
'मम्मी-पप्पा के पास जब इतने पैसे है ही, तो
उनका खर्च उनके पास से ही क्यो न लिया जाय ?
मम्मी के हजार रुपये, पप्पा के हजार रुपये,
कुल दो हजार रुपये मम्मी-पप्पा को तुझे देने होगे ।
बडे भैया द्वारा दिये गये इस व्यवहारु समाधान से मै तो
एकदम खुश हो गया ।
'परन्तु बडे भैया ! पप्पा से यह बात करेगा कौन ?' मैने पूछा ।
'यह चिन्ता तुझे करने की जरूरत नहीं ।
व्यवहार मे रहना हो, तो व्यवहारु बनना ही पडता है ।
इसमे सवेदनशीलता नहीं चलती ।
पप्पा से बात मै कर लूँगा ।'
और
उस दिन रात के समय बडे भाई ने अकेले मे पप्पा के
समक्ष यह प्रस्ताव रखा ।
'देखिये, आपको अलग रहने न जाना हो, तो
हम दोनो भाईयों ने एक दूसरा विकल्प सोचा है ।'
'कौन-सा विकल्प ?' उदासी के साथ पप्पा ने पूछा ।

'आप व मम्मी छोटे के साथ रहने जाये ।
वह और उसकी पत्नी, दोनो आपकी देखभाल अच्छी तरह से करेगे, परन्तु आपको उसे हर महीने
'हर महीने क्या ?'
'दो हज़ार रुपये देने होंगे ।'
'दो हजार रुपये ?'
'हॉ' ।
'परन्तु किसलिये ?'
'क्यो ? आपको साथ रखने का खर्च तो आएगा न ? यह खर्च वह क्यो उठाये ? वैसे भी आपके परलोकगमन के बाद आपकी सपत्ति विरासत मे हमे ही मिलनेवाली है न ? तो फिर अभी आप ही अपने हाथो से रकम देते रहे, इसमे क्या हर्ज है ? और
देखिये पप्पा ! थोडे व्यवहारु बनते जाईए ।
शेष जिदगी सुख-चैन से बितानी हो, तो जीवन मे कुछ समझौते करने ही पडते है ।
बडे भैया की इस ऑफर पर पप्पा ने सम्मति की मुहर लगा तो दी, परन्तु
महाराजसाहेब ! उस रात अपने कमरे मे मम्मी-पप्पा जो रोये है, वह दृश्य अब भी याद आने पर मै कॉप उठता हूँ । मम्मी से पप्पा ने इतना ही कहा,
जिन बेटो को मैने ज़िंदगी भर कंधा दिया है और तूने गोद दी है, वे ही बेटे आज हमे अपने घर मे रखने के लिए हर महीने के दो हज़ार रुपये मांग रहे है ।
मैने बडे को दो हजार रुपये देने के लिए सम्मति तो दे दी है, परन्तु मै तुझसे पूछता हूँ कि हर महीने हमारे पेट मे डालने के भोजन के लिए बेटे के हाथ मे दो हजार रुपए देने के बदले बीस रुपयो का जहर लाकर पेट मे डाल दे तो?
महाराजसाहेब ! मै आगे कुछ नहीं लिख सकता ।

महाराजसाहेब,



पप्पा द्वारा मम्मी को कहे गये ये शब्द मैने दरवाजे के पास
खडे रहकर सुने थे ।
सुबह में मैने बडे भैया से यह बात की ।
उन्होंने मुझसे इतना ही कहा कि
'मबको अपना जीवन प्यारा ही होता है ।
पप्पा तो बहुत भावुक हैं, इसलिए आवेश में ऐसा
बोले है, वे कोई ज़हर खानेवाले नहीं ।
वे तेरे यहाँ रहने ज़रूर आयेंगे ही
और आनन्द से रहेंगे ।'
बाकी, मम्मी-पप्पा की अभी की लाल टमाटर जैसी तबीयत
देखते हुए तो लगता है कि उन्हे बीस वर्ष तक कुछ होनेवाला
नहीं, यह तू समझ लेना ।
हॉ, हर महीने दो हजार रुपए लेने के मामले मे तू मजबूत रहना ।
महाराजसाहेब,
आपको लगता है न कि हम दोनो भाई
फौलाद का कलेजा लेकर बैठे है ।
नहीं तो, यह निर्लज्जता, बेशरमी व कठोरता आता है
कहाँ से ?
बडे भाई का अनुमान सच निकला ।
मम्मी-पप्पा ने अपने मन के साथ समाधान कर लिया ।
मै बडे भैया से अलग रहने गया, मम्मी-पप्पा
मेरे साथ रहने आ गये ।
उनकी देखभाल मै मेरे ढग से करने लगा ।
वे मुझे हर माह दो हजार रुपए देने लगे ।
यह सिलसिला पिछले पॉच वर्षो से चल रहा है ।
हर महीने की पहली तारीख को मेरे हाथ मे दो हज़ार रुपये
रखते हुए पप्पा के हाथ कॉपते है, परन्तु
मेरा हृदय एकदम मजबूत बन गया है ।

बिना किसी हिचकिचाहट के पप्पा हाथ मे से मै दो हज़ार रुपये
ले लेता हूँ और कभी-कभी तो हँसते-हँसते पप्पा को
कह भी देता हूँ कि
'महगाई बढ रही है, यह याद रखना ।'
हालाँकि,
पिछले डेढ महीने से, यानी
आपके साथ इसके लिये पत्रव्यवहार शुरू करने के बाद से
इस निर्लज्जता को मैने तिलांजलि दे दी है ।
पप्पा को मुझमे आए हुए इस परिवर्तन से
आनन्द ही नहीं, आश्चर्य भी हुआ है ।
परन्तु,
मै आपसे यही कहना चाहता हूँ कि
यह था मेरा मूल स्वरूप । कठोरता व
निर्लज्जता के इस स्वरूप को देखकर शायद पत्थर को भी
रोना आ जाय ।
माँ को हर महीने नौ हज़ार देना यदि
सत्यदर्शन का परिणाम हो,
पाँच लाख देना यदि
स्नेहदर्शन का परिणाम हो,
तो
हर माह बिना किसी हिचकिचाहट के माँ-बाप के पास से
दो-दो हज़ार रुपए लेना, किसका परिणाम कहा जाय ?
मिथ्यादर्शन का ?
भ्रान्तदर्शन का ?
पशुदर्शन का ? पत्थरदर्शन का ?
या फिर राक्षसदर्शन का ?
महाराजसाहेब ! मम्मी-पप्पा के साथ मै जो बर्ताव कर चुका हूँ
उसके लिए दिल मे प्रगटी हुई व्यथा का वर्णन करने के
लिये मेरे पास शब्द नहीं ।

३७

दर्शन,

मै यही चाहता हूँ कि मम्मी-पप्पा के साथ किये गये
गलत बर्ताव के लिये तेरे मन मे प्रगटी हुई पश्चात्ताप की
आग मे तेरी तमाम कलुषित विचारधाराये
भस्मीभूत हो जाये ।

सच्चा पछतावा तो वह है कि जो
ऑख को रुलाकर या
दिल को जलाकर ही नही रूक जाता, परन्तु
जीवन को सुधारकर ही रहता है ।

मम्मी-पप्पा के साथ अबसे तेरे व्यवहार मे
सर्वत्र स्नेहदर्शन ही चालकबल बना रहे,
इसके लिए तू तो खास सावधानी रखना ही,
परन्तु
तेरी पत्नी को भी इस मामले मे तू सावधान कर देना ।
तुझे शायद पता न हो,
परन्तु ऐसा भी होता है कि कीमती सोने के प्याले को,
एकदम हल्का गिना जानेवाला पत्थर एक बार तो तोड ही देता है ।
बस,
इसी तरह सोने जैसे सुन्दर आत्मीय सबन्धो को हल्के
पत्थर जैसी तुच्छ विचारधाराये, आवेश भरे शब्द
व आक्रोश भरा बर्ताव तहस-नहस कर देता है ।
युवा वय की सबसे बडी दिक्कत यह है कि
यह वय सर्वत्र स्वय को मनपसन्द ऐसी परिस्थिति का
ही दर्शन करना चाहती है । सामनेवाले
व्यक्ति का बर्ताव अपनी पसदगी के ढॉचे मे ढल जाय,
ऐसा ही होना चाहिये, ऐसा आग्रह इस वय का होता है ।
परन्तु
यह सभव ही नहीं ।

हाथ मे रहा हुआ पानी

नीचे गिरकर कैसा आकार धारण करेगा
इसकी कोई आगाही करना जैसे मुश्किल है,
वैसे ही कर्म के अधीन रहे हुए परिबल
कैसी परिस्थिति का निर्माण करेंगे, इसकी आगाही
करना भी मुश्किल ही है ।
परिस्थिति के बारे मे यदि यह हकीकत है, तो
व्यक्ति के बर्ताव के बारे मे भी ऐसी ही कोई हकीकत है ।
तू चाहता है कि
तेरी पसदगी के ढॉचे मे
पप्पा का मन ढल जाय । तेरी पत्नी चाहती है कि उसकी पसदगी के ढाचे मे
सासु का मन ढल जाय ।
परन्तु यह इसलिये संभव नहीं कि
तेरा और तेरी पत्नी का मन यदि घन है, ठोस है,
तो
मम्मी और पप्पा का मन भी घन ही है ।
द्रवरूप मे रहा हुआ पानी
घन तपेली मे समा जाय, यह बात अलग है,
परन्तु
घनरूप मे रही हुई थाली, घन रूपवाले तपेले मे समा जाय,
यह सभावना तो है ही कहॉ ?
बस, यही वास्तविकता यदि सतत तेरी नज़र के सामने रहेगी,
तो मम्मी-पप्पा के साथ सभवित अनेक सघर्षो को तू
टाल सकेगा ।
क्या बताऊँ तुझे ?
अच्छा घर बनाने मे सफलता मिलनी
अलग बात है,
परन्तु उस घर मे अच्छी तरह से रहने मे सफलता
पाने के लिए तो
मन को सतत समाधानो के लिए तैयार रखना ही पडता है ।

महाराजसाहेब,

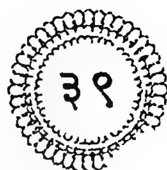


परिस्थिति व व्यक्ति के बारे मे
आपके द्वारा लिखी गयी बात पढी ।
यह बात समझ मे आ गयी है, ऐसा लगने पर भी न जाने
अनपेक्षित परिस्थिति के उपस्थित होने पर
व
सामनेवाले व्यक्ति का बर्ताव धारणा से विपरीत दिखने पर
मन आवेश मे आ ही जाता है ।
उस वक्त न बोलने योग्य शब्द निकल जाते है और
न करने योग्य वर्तन हो जाता है ।
उस वक्त यह पता नहीं चलता कि
वह समझ कहॉ चली जाती है ?
इस विषय पर आप कुछ बतायेगे ?

दर्शन,

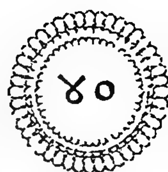
एक छोटी-सी बात ध्यान मे रखने योग्य है ।
जो भी व्यक्ति
स्वयं मे या संयोग मे परिवर्तन लाना चाहता है,
उस व्यक्ति के लिये धीरजवान बनना अत्यन्त अनिवार्य है ।
धीरज
कमजोर की ताकत है तो
ताकतवर की
कमजोरी है ।
अधीरता ने कई कुटुबो को छिन्न-भिन्न कर डाला है, तो
धीरज ने कई कुटुबो को छिन्न-भिन्न होने से बचाया है ।
तू तेरे मन को स्वस्थ रखना-चाहता है न ?
तो एक काम कर ।
चाहे जैसी परिस्थिति का सर्जन क्यो न हो,
व्यक्ति का बर्ताव चाहे जितना अनपेक्षित क्यो न हो,
उस पर तात्कालिक प्रतिक्रिया व्यक्त करने के बदले

थोडा वक्त गुजरने दे ।
तुझे अकल्पनीय परिणाम देखने मिलेगा ।
याद रखना,
घर मे या जीवन मे पैदा होनेवाले अधिकतर सघर्ष तो
ऐसे होते है कि जो एक क्षण अनिवार्य लगते है, तो
उसके बाद की ही क्षण मे ये तुच्छ लगने लगते है ।
पप्पा के मुख से निकला हुआ कोई कटुवाक्य तेरे
मन मे हलचल मचाने लगे,
तब उसे वाणी के द्वारा प्रगट न होने देकर
थोडा वक्त गुजर जाने दे ।
हो सकता है कि पप्पा को स्वयं ही ऐसे कटुवचनो के लिये
पछतावा होने लगे,
अथवा तुझे स्वय ही पप्पा के कटु वचनोच्चार के पीछे
रहा हुआ आशय समझ मे आ जाय ।
सक्षेप मे,
यदि घर को व्यवस्थित रखना है और
मन को यदि स्वस्थ रखना है, तो धीरज रामबाण औपध है ।
जिसके पास यह नहीं,
वह व्यक्ति न तो अपने मन को स्वस्थ रख
सकता है और न ही घर के सदस्यो को व्यवस्थित रख सकता है ।
दर्शन,
सरल को जटिल बनाना, यह तो मन का गोरखधधा है ।
शान्ति हो, वहाँ अशान्ति फैलाना,
समाधान हो, वहाँ समस्या पैदा करना,
` : हो वहाँ द्वेष लाना, प्रसन्नता हो, वहाँ आक्रोश पैदा करना...
ये ही तो मन के कार्य हैं ।
तू यदि इन तमाम अनिष्टो से व अपायो से स्वय को
बचाना चाहता हो, तो यह सूत्र सतत नजर के सामने रखता जा ।
'प्रतिक्रिया अभी तो व्यक्त करनी ही नहीं ।'



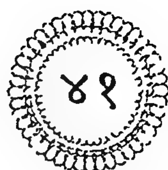
महाराजसाहेब,
एक बात पूछुँ ?
प्रतिक्रिया तुरन्त व्यक्त न करने की जवाबदारी सिर्फ
आश्रितो को ही निभानी चाहिये या बडो को भी ?
पुत्रो को ही निभानी चाहिये या पप्पाओ को भी ?
बहुओ को ही निभानी चाहिये या सासुओ को भी ?
यह प्रश्न मै आपसे इसलिये पूछ रहा हूँ कि
मेरे द्वारा पप्पा की अपेक्षा के विरुद्ध कुछ भी वर्तन जब
हो जाता है, पप्पा तुरन्त ही उसकी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त
करने लगते है। तब वे मेरी कोई सफाई नहीं सुनते।
ऐसा ही होता है मेरी पत्नी के साथ।
उसके द्वारा मम्मी की थोडी भी अवगणना हो जाय कि
एक पल की भी राह देखे बिना मम्मी
आवेश मे आकर उस पर टूट ही पडती है।
जवानी के कारण हमारा खून गरम हो, यह तो समझा जा सकता है,
परन्तु
इतनी पुख्त वय मे भी मम्मी-पप्पा धीरज नहीं रखते,
यह कैसे चले ?
क्या आप देंगे इसका जवाब ?
दर्शन,
लगता है कि मेरे पिछले पत्र ने तेरी दुखती रग को
छेड दिया है।
तेरे द्वारा पूछे गये प्रश्न मे आक्रोश के सिवाय, और
कुछ नहीं दिखता।
फिर भी तूने प्रश्न पूछ ही लिया है, तो सुन इसका जवाब।
प्रतिक्रिया तुरन्त व्यक्त न करने की जवाबदारी
दोनो को निभानी है,
छोटो को भी व बडो को भी,
पुत्रो को भी व पप्पाओ को भी।

बहुओं को भी व सासुओं को भी ।
फिर भी
ऐसा होता है कि बडे प्रतिक्रिया जल्दी
व्यक्त कर देते है
और
इसमें भी 'अपनो' से जब ऐसा वर्तन होता
है, तब तो खास ।
तुझे पता है ?
अन्याय की,
अपमान की या
संताप की बेचैनी जब असह्य बन जाती है,
तब भलेभले समझदार लोग भी
न करने योग्य कार्य कर बैठते हैं ।
या तो उनके मन मे मडराती हुई निराशा
उन्हे आत्महत्या के मार्ग पर जाने के लिए मजबूर कर देती है
या फिर
उनके मन मे प्रगटा हुआ सामनेवाले व्यक्ति के प्रति
वैर का तिनका
ज्वाला बनकर उस व्यक्ति को
खत्म कर डालने तक तत्पर बन जाता है ।
इस वास्तविकता को तू मामूली मत मानना ।
हो सकता है कि तेरे द्वारा पूछा गया प्रश्न, तेरा व तेरी
पत्नी का रोज का अनुभव हो,
मम्मी-पप्पा के द्वारा होनेवाली तीखी प्रतिक्रिया
तुम दोनो को सतत परेशान करती हो,
फिर भी मै तुझसे कहता हूँ कि तू आवेश मे तो मत आना, परन्तु
मम्मी-पप्पा के प्रति
तेरे व तेरी पत्नी के वर्ताव का खास निरीक्षण करना ।
उस तीखी प्रतिक्रिया का कारण तुझे शायद उसीमें देखने मिल जाएगा ।



महाराजसाहेब,
आप तो कमाल कर रहे हैं ।
अपराधी के कठघरे मे आपने मुझे ही खड़ा कर दिया है ।
भूल मेरी है या मम्मी-पप्पा की
यह जानने की तो आप कोशिश भी नहीं करते ।
कोई कारण है इसके पीछे ?
मम्मी-पप्पा ही सहानुभूति के पात्र ?
मेरे पक्ष मे या मेरी पत्नी के पक्ष मे एक भी मार्क नहीं ?
दर्शन,
तेरे प्रश्न का जवाब दूँ, इससे पहले
कुछ वक्त पहले ही बबई के एक वैभवी
विस्तार मे घटी करुण घटना तुझे बता दूँ ।
शायद वह जानने से भी तेरे प्रश्न का समाधान हो जाय ।
एक ऊँची इमारत की
आठवीं मजिल से कूदकर
७५ वर्ष के एक वृद्ध पुरुष व
७२ वर्षीय उसकी पत्नी ने
जीवनलीला समाप्त कर दी ।
प्रेम मे असफल होने से युवक-युवतियो द्वारा होनेवाली
आत्महत्या के समाचार बबई के लिये शायद रोज के है ।
सासु के अत्याचार से तग आकर शरीर पर केरोसिन छिडककर
जलनेवाली बहुओ की विदाई के समाचार का बबई आदी वन गया
है, परन्तु दपती की
यह आत्महत्या की घटना ववई के लिए नयी थी ।
करीब डेढ-पौने दो करोड के फ्लैट मे
रहनेवाले वे दपती कोई ऐसे असाध्य रोग से पीडित नहीं थे
कि जिससे तग आकर
उन्हे ऐसा कदम उठाना पडा हो ।
जमीन पर गिरते ही दपती के प्राणपखेरु

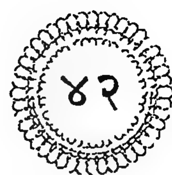
उड गये ।
लोग इकट्ठे हो गये ।
पुलिस आ गयी ।
वृद्ध पुरुष के जेब की तलाशी ली गयी ।
अग्रेजी मे लिखी एक चिट्ठी उसमे से निकली ।
उसमे लिखा हुआ था कि
'पुत्र व पुत्रवधू की ओर से हो रहे अत्याचारो से
तग आकर हमने यह कदम उठाया है ।'
दर्शन,
आया कुछ समझ मे ?
बेटे के लिए
जो बाप ज़िंदगी-भर छत्र बनकर आकाश की तरह खड़ा रहा
और
जो माँ धरती बनकर सतत आधार बनी रही,
उसी पुत्र की ओर से व पुत्रवधू की ओर से
माँ-बाप के कैसे अपमान हो रहे होगे
कि उन्हें ऐसा अन्तिम कदम उठाने के लिये मजबूर होना पड़ा होगा ।
क्या बताऊँ तुझे ?
बबई के समाचार-पत्रो मे दूसरे दिन ये समाचार
चमके तो जरूर, परन्तु
उसके बाद कई दिनो तक अखबार के सपादको के
नाम पर अनेक माता-पिताओ के फोन आते रहे
और ऐसे पत्र आते रहे, जिसमे सबने यही बताया था कि
हमारे घर मे हमारी भी यही स्थिति है ।
उनमे व हममे फर्क इतना ही है कि
आत्महत्या करके जीवन समाप्त करने की जो हिम्मत उनमे थी,
वह हिम्मत हममे नहीं ।
दर्शन ! तू समझ सकेगा इस पर से आज के माँ-बापो की
हालत की वास्तविकता !



महाराजसाहेब,

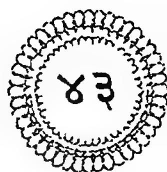
आप यकीन नहीं करेगे,
परन्तु पिछले पत्र मे आपका लिखा दृष्टान्त
पढकर मेरे शरीर मे भय की सिहरन फैल गयी ।
पल भर के लिए तो मै अत्यन्त अशुभ कल्पना मे चढ गया ।
उस दपती की जगह
मुझे मेरे मम्मी-पप्पा दिखने लगे ।
लहू की नदी मे मम्मी-पप्पा के देह को देखकर
इकट्ठा हुआ लोगो का टोला
और
इस ओर पुलिस के द्वारा मेरे हाथो मे पहनायी जानेवाली हथकडी ।
महाराजसाहेब !
मै रात-भर सो नहीं पाया ।
आज मै खाना भी नहीं खा पाया ।
अभी भी मेरा मन घबराहट महसूस कर रहा है ।
आपकी ओर से यदि मुझे वक्त पर मार्गदर्शन न मिला होता
और
मम्मी-पप्पा के साथ मेरा ऐसा ही
अशोभनीय व्यवहार जारी रहा होता, तो शायद
इस दपती को जो कदम उठाना पडा
वही कदम क्या मेरे मम्मी-पप्पा को उठाना पडता ?
इसकी, सजा के रूप मे क्या मुझे जेल मे जाना पडता ?
मेरी पत्नी क्या सबकी फटकार का शिकार बनती ?
मै कुछ सोच नहीं पा रहा ।
चाहता हूँ कि आपकी ओर से तुरन्त ही योग्य मार्गदर्शन मिले ।
दर्शन,
जो होने ही वाला नहीं, उसकी कल्पना कर-करके मन को वेचैन रखने का कोई अर्थ नहीं ।
जल्दी से जल्दी मन को अशुभ की कल्पना से मुक्त कर दे ।

यह सत्य घटना तो मैने तुझे इसलिये लिखी थी कि
तू भी युवा मानस को जान सके,
सर्वदा व सर्वत्र मम्मी-पप्पा का ही कसूर निकालनेवाली
युवाओ की वक्रदृष्टि को तू जान पाये,
उपकारी को सतत सताते ही रहने मे, दवाते ही रहने मे
कितना भयकर परिणाम आ सकता है, इसका तुझे ख्याल आये ।
मै तो तुझसे इतना ही कहूँगा कि
खुद के घर में ही यदि इन्सान को परायापन महसूस होने लगे
या स्वयं के ही स्वजनों के लिए स्वयं पराया वन गया है,
ऐसा उसे लग जाय,
इतनी हद तक इन्सान जब अवहेलना का शिकार बनता है,
तब या तो निराश होकर वह अपना जीवन
समाप्त कर बैठता है, या फिर आवेश मे आकर
सामनेवाले के जीवन को बरबाद कर देता है ।
आत्महत्या करके जीवन समाप्त कर बैठे
उस बाप की मनोदशा को तू समझ सकता है ?
वे निराश बन गये, इसलिये उन्होंने आत्महत्या तो कर ली
परन्तु जाते-जाते भी वे अपने आवेश को रोक न पाये
और इसलिये तो अपनी कमीज के जेब मे चिठ्ठी रखते
गये कि 'पुत्र व पुत्रवधू के अत्याचारो से तग आकर
हमने यह कदम उठाया है ।'
इसका अर्थ क्या है ?
'हम तो जीवन समाप्त करके
परलोक मे रवाना हो रहे है; परन्तु तुम दोनो के
जीवन को तो जीते-जी बरवाद करते जा रहे है ।'
नहीं, निराशा व आवेश, दोनो भयंकर है ।
तू कभी इन दोनो परिवलो का शिकार मत वनना और
किसीके भी जीवन मे इन दोनो का प्रवेश हो जाय,
ऐसे वर्तन का तू निमित्त मत वनना ।



महाराजसाहेब,
आपके पत्र से मन कुछ स्वस्थ हुआ है ।
आपकी हितशिक्षा गभीरता से मन पर ली है ।
फिर भी मै चाहता हूँ कि इस विषय मे आपकी ओर से
कुछ ठोस मार्गदर्शन मिलता रहे, क्योकि
मन को हमेशा के लिये समझदारी के ढॉचे मे ढला हुआ रखना
बडा ही कठिन काम है ।
कर्तव्य की बात सुनने पर कर्तव्यपालन के लिए मन
लालायित बन तो जाता है, परन्तु तुरन्त ही सामनेवाले
व्यक्ति को भी कर्तव्य का पालन करना चाहिये, ऐसी अपेक्षा रख
बैठता है ।
राम बनने मे उसे कोई हर्ज नहीं, परन्तु
छोटे भाई को भरत बनना ही चाहिये, यह उसकी माग है ।
भरत बनने मे उसे कोई दिक्कत नहीं, परन्तु
पिताजी को दशरथ बनना ही चाहिये,
यह उसका आग्रह है ।
सक्षेप मे,
बडा भाई दुर्योधन बनता हो, तो
वह राम बनने के लिए तैयार नहीं ।
बडे भाई की पत्नी यदि मथरा बनती हो, तो
अपनी पत्नी को सीता बनाने की उसकी कोई तैयारी नहीं ।
पप्पा अपनी मर्यादा मे रहकर पुत्र के प्रति अपनी फर्ज
बराबर अदा करते हो, तो पप्पा के प्रति
पुत्र के रूप मे फर्ज निभाने मे उसे कोई हर्ज नहीं ।
मन के इस अभिगम का क्या किया जाय ?
वह अच्छा रहने के लिए तैयार है,
परन्तु सामनेवाला भी अच्छा रहता हो, तभी ।
दर्शन,
मन के रूख की तूने जो बात लिखी, वह ठीक है,

परन्तु
यह रूख बहुत वजन देने योग्य नहीं है,
क्योंकि पैसे लेकर बदले में वस्तु देनेवाला व्यापारी जिस प्रकार कोई पराक्रम नहीं करता,
उसी प्रकार
क्षमा के सामने क्षमा की पसदगी करनेवाला मन
कुछ नया नहीं करता ।
हॉ, ऐसा रूख शायद बाजार की दुनिया मे उचित माना जाता होगा, परतु आत्मीय सबन्धो के जगत मे तो यह रूख घातक ही साबित होता है । मन के इस रूख के साथ सम्मत होने की तेरे अन्त करण को स्पष्ट मना कर देना ।
एक महत्त्वपूर्ण बात बताऊँ ?
अग्रेजी मे दो वाक्य है, उनमे से एक वाक्य है-
I LIKE YOU, और दूसरा वाक्य है- I LOVE YOU
व्यापारी को ग्राहक अच्छा लगता है,
परन्तु
व्यापारी ग्राहक को चाहता है,
जबकि
पिता को पुत्र अच्छा भी लगता है व
पिता पुत्रको चाहता भी है ।
LIKE में बात आती है अच्छा लगने की
जब कि LOVE में बात आती है चाहने की ।
मन के जिस रूख की बात तूने लिखी है, वह LIKE मे बराबर है, परन्तु LOVE मे तो सर्वथा अनुचित है ।
मम्मी-पप्पा के साथ तेरा सबन्ध LIKE का नहीं, LOVE का है,
अच्छा लगने का नहीं, चाहने का है, ऐसा मेरा अनुमान है ।
यह बात ठीक तो है न ?
तू लिखना ।
बाद मे आगे क्या करना, यह मै तुझे बताऊँगा ।



महाराजसाहेब,

मम्मी-पप्पा के साथ का सबन्ध सिर्फ अच्छे लगने तक ही
सीमित न होकर चाहने तक का होता है,
इसके बारे मे आपको अनुमान करने की कोई जरूरत नहीं है,
यह तो हकीकत ही है ।
परन्तु 'अच्छा लगने' व 'चाहने' मे क्या इतना
अन्तर है कि जो हमारी जीवनव्यवस्था को ही बदल डाले ?

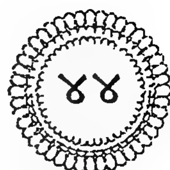
दर्शन,

'अच्छा लगना' यह बुद्धि का कार्य है, जबकि
'चाहना' यह हृदय का कार्य है ।

'अच्छा लगने' की भूमिका सयोगाधीन होती है,
अल्पकालीन होती है,
स्थलसापेक्ष होती है,
सकारण होती है ।
वैसे तो सडक पर तुझे दात कुरेदने की एक तिली मिल
जाती है, वह भी तेरी ऑख को अच्छी लगती है, तो
तू उसे हाथ मे उठाता भी है, उससे तू दात कुरेदता भी है,
और कार्य समाप्त होते ही उसे तू फेंक देता है ।
यह क्या है ?
अच्छा लगने की भूमिका,
परन्तु चाहने की भूमिका तो शिखर पर की भूमिका है ।
वहाँ स्वार्थपुष्टि का कोई चलन नहीं होता,
उपयोगिता का कोई प्रश्न नहीं होता,
सयोग, स्थल या समय की पराधीनता नहीं होती,
वहाँ केन्द्रस्थान मे एक ही बात होती है, हृदय की
ऊर्मियाँ, भावना का अबार, सवेदना की अनुभूति ।
तुझे समझ मे आये, वैसी भाषा मे कहूँ, तो तेरे घर मे
रहा हुआ नौकर तेरे लिये 'अच्छा लगने' की भूमिका मे है,
जबकि मम्मी-पप्पा 'चाहने' की भूमिका मे है ।

नौकर को तू चाहे महीने के १ २०० देता हो,
तेरे पप्पा को भी १,२०० देता हो,
परन्तु मन मे एक बात एकदम स्पष्ट है कि
नौकर काम करता है, इसलिये उसे मै तनख्वाह देता हूं,
जबकि
पप्पा तो मेरे उपकारी है ।
उन्हे १,२०० तो क्या, १२,००० दूँ, तो भी कम ही है ।
दर्शन,
लिख रखना तेरे दिल की दीवार पर कि
जहॉ सिर्फ अच्छा लगने की ही भूमिका होती है,
वहॉ शान्ति, स्वस्थता, प्रसन्नता या समाधान,
जो भी हो, अल्पकालीन ही होता है,
जबकि
जहाँ चाहने की भूमिका होती है, वहॉ
शान्ति, प्रसन्नता, स्वस्थता या समाधान
जो भी हो, वह चिरकालीन तो होता ही है,
परन्तु साथ ही साथ आनन्ददायक भी होता है ।
शायद किसी कारणवश इसमे दरार पडती भी है, फिर भी
उसे जोड़ने मे देर नहीं लगती ।
मै तो तुझे कहता हूॅ कि
चाहे किसी कारण से मम्मी-पप्पा के प्रति तेरे मन मे
नापसदगी पैदा हुई हो,
सघर्ष शुरु हो गया हो,
अनबन चल रही हो,
परन्तु तेरे मन मे मम्मी-पप्पा के प्रति प्रेम तो है ही, चाहना तो है ही ।
इसलिये तो तू मेरे साथ इस विषय पर पत्रव्यवहार कर रहा है ।
मै तुझसे इतना ही कहूँगा कि जल्दी से जल्दी इस नापसदगी,
संघर्ष या अनबन की दरार को जोडकर
तू मुझे इसकी प्रतीति करा दे ।

हाराजसाहेब,



चाहता हूँ कि मुझमे आपके द्वारा रखे गये विश्वास को
र्थक करने का बल पैदा हो ।
, इतना तो आपसे जरूर कहूँगा कि
ने लबे पत्र-व्यवहार के बाद मम्मी-पप्पा के साथ का
ा अभिगम 'अच्छा लगने से' 'चाहने' तक तो पहुँच ही गया है ।
क विषय मे तो मै स्पष्ट हो गया हूँ कि
भेद या मनभेद के कारण
मे चाहे सघर्ष हो, झगडे हो,
न्तु इस सघर्ष या झगडे के कारण घर टूटना तो नहीं ही चाहिये ।
सकता है कि
के फर्क के कारण या गलतफहमी के कारण
व पप्पा के बीच कई बातो मे
भेद होता ही हो, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यह
भेद मुझे पप्पा से सर्वथा अलग कराकर ही रहे ।
तो आपसे पूछना चाहता हूँ कि आप कोई ऐसी चाबी
हीं बता देगे, जिसके उपयोग से मै चाहे जैसे विकट प्रसगो मे
स्वस्थता टिका सकूँ ?
मी-पप्पा के प्रति सद्भाव टिका सकूँ ?

र्शन,

व मे, यदि तू ईट-चूने से बने मकान को घर मे रूपान्तरित
रना चाहता हो, तो जीवन का यह एक महान सत्य सतत
जर के सामने रखना कि
ो व्यक्ति अपने नज़दीक मे रहे हुओ को सुखी कर सकता है,
र रहे हुए सुख भी उस व्यक्ति के नज़दीक आ जाते है
ौर
ो व्यक्ति अपने नज़दीक में रहे हुओं को दु:खी करता रहता है
र रहे हुए दु:ख भी उस व्यक्ति के नज़दीक आ जाते है,
ह बात मैने तुझे सोच-समझकर ही लिखी है,

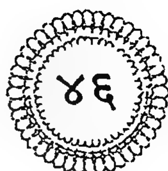
क्योकि मै मन के विचित्र स्वभाव को जानता हूँ ।
वह दोस्त को खुश करने के लिये तडपता है,
परन्तु भाई की उसे कुछ पडी नहीं होती ।
वह ग्राहक को संतोष देने के लिये तत्पर रहता है,
परन्तु पप्पा के असतोष पर
ध्यान देने के लिए भी वह तैयार नहीं होता ।
दूर से आयी हुई मौसी के साथ वह दो-दो घटे बाते
करने के लिये बैठ जाता है
परन्तु मम्मी के साथ बात करने के लिये उसे दो मिनिट
भी नहीं मिलती ।
संक्षेप मे,
दूर रहे हुए द्रव्यों के प्रति प्रेम
व निकट रहे हुओं के प्रति दुर्भाव,
दूर रहे हुओं का ध्यान व निकट रहे हुओं की उपेक्षा
दूर रहे हुओं की स्मृति व निकट रहे हुओ की विस्मृति,
मन का यह स्वभाव है ।
मन के इस विचित्र स्वभाव को जो नहीं जानता और
इसी कारण से जो निकट रहे हुओ से उपेक्षा, अवगणनाभरा
व्यवहार करते रहता है,
उस व्यक्ति के लिए बेशक कहा जा सकता है कि
वह व्यक्ति लोकप्रिय होगा,
परन्तु परिवारप्रिय नहीं होगा ।
बाहर के लोगो को शायद उससे सतोष होगा,
परन्तु घरवाले तो उससे असतुष्ट ही होगे ।
बाहर वह प्रशसा पाता होगा,
परन्तु घरवाले तो उसका तिरस्कार ही करते होगे ।
दर्शन, दूसरे की बात मत करना ।
तेरी स्वय की स्थिति क्या है ?
खास लिखना ।



महाराजसाहेब,

मन के स्वभाव की बात लिखकर आपने तो मानो
मेरे स्वभाव की बात ही लिख दी ।
यही स्वभाव है मेरा ।
सामग्री देता हूँ परिवारजनों को
व
समय देता हूँ बाहरवालो को ।
मम्मी या पप्पा कोई भी चीज मगवाते है,
तो वह चीज उनके पास हाजिर करने मे मुझे कोई
तकलीफ नहीं पडती, परन्तु
मम्मी-पप्पा यदि समय मॉगे कि
तू सारे दिन मे आधा घटा तो हमारे
पास बैठ । तेरे व्यवसाय की या व्यवहार की कुछ तो
बात हमारे पास बैठकर कर । तो
वह समय देने की मेरी कोई तैयारी नहीं, क्योकि
मुझे बाहरवालो को सभालना होता है,
व्यापारी को ऑर्डर देना होता है,
ग्राहक के पास से वसूली करनी होती है,
मित्रो को होटल मे मिलना होता है,
व्यवसाय फैलाने के लिये कई लोगो के साथ सपर्क करना होता है ।
ऐसी स्थिति मे मम्मी-पप्पा को मै समय कहॉ से दे सकता हूँ ?
मै उन्हे स्पष्ट कह देता हूँ कि
समय के अलावा मेरे पास आप जो भी चाहे,
मॉगे, क्योकि आज मेरे पास जवानी है,
गरम खून है, मन मे अदम्य उत्साह है ।
इस स्थिति मे मै धधे के विकास के पीछे समय न
देकर आपको ही समय दिया करूँ, तो मेरे भविष्य का क्या ?
मेरी सुरक्षा का क्या ?
और वैसे भी मै आपके पास बैठूँ या न बैठूँ,

आपको क्या फर्क पडता है ?
आपका तो सारा इन्तज़ाम बराबर हो ही जाता है न ?
आपके कपड़े धुल जाते है,
भोजन वक्त पर मिल जाता है,
बीमार पडने पर दवा वक्त पर मिल जाती है,
आपके लिये रात मे सोने के लिये गद्दी वक्त पर बिछ जाती है,
दुपहर की चाय वक्त पर मिल जाती है,
आपको दिये गये स्वतत्र कमरे मे धर्माराधना करने की
अनुकूलता भी आपको बराबर मिल ही जाती है ।
इससे बढकर और चाहिये भी क्या ?
महाराजसाहेब !
पप्पा के सामने मेरी दलीले ऐसी होती है, तो
मम्मी के आगे मेरी पत्नी की दलीले भी ऐसी ही होती है ।
घर के काम निपटने के बाद मम्मी यदि उसे अपने पास
बैठने का कहती है, तो वह भी मम्मी को
ऐसा ही कुछ सुना बैठती है ।
'मुझे खरीदी करने के लिये बाजार जाना है,
मेरी सहेली को भी साथ ले जाना है,
महिलामडल की मीटिग मे मुझे उपस्थित रहना है,
काफी वक्त से मायके भी नहीं गयी हूँ, तो
वहॉ भी एकाध चक्कर मारकर आने की इच्छा है,
आज साडी का विज्ञापन देखा है,
वहॉ जाकर थोडी साडियॉ भी खरीदनी है ।
बाकी, इस उम्र मे आपके साथ बैठकर करूँ भी क्या ?
'माला जपने की उम्र आपकी है
घूमने-फिरने की उम्र मेरी है ।
महाराजसाहेब ! पत्नी की इन बातो को सुनकर मम्मी मौन
तो हो जाती है, परन्तु कभी-कभी उसकी ऑख के कोने मे
ऑसू की दो बूदे नजर आती है ।



दर्शन,

तेरा पत्र पढा ।
एक बात तुझे बता दूँ कि
वाल्यावस्था व वृद्धावस्था..ये दो अवस्थायें ऐसी हैं कि
जिनमे सामग्री से भी समय अधिक ताकतवर साबित होता है ।
मै तुझसे ही पूछता हूँ ।
तेरी बाल्यावस्था मे तेरी मम्मी ने तुझे सिर्फ दूध ही
दिया होता और समय न दिया होता तो ?
पप्पा ने सिर्फ तुझे खिलौने लाकर दिये होते,
और तेरे साथ खेलने के लिये समय ही न निकाला होता तो ?
तू बीमार होता, तब तुझे नौकर के साथ
अस्पताल भेज दिया होता और स्वय साथ मे न आये होते तो ?
स्वय का व्यवसाय विकसित करने के लालच मे
पैसे देकर तेरे मौज-शौक पूरे किये होते,
परन्तु तेरे सर पर हाथ फिराकर वात्सल्य न दिया होता तो ?
शिक्षण के लिये तेरी व्यवस्था कर दी होती,
परन्तु सस्करण के लिये तेरी व्यक्तिगत रूप से देखरेख न की होती
तो ?
तुझे सोने के लिये सुन्दर, सुकोमल गद्दी दी होती,
परन्तु मम्मी ने अपनी गोद देने से
इन्कार कर दिया
होता तो ?
ट्यूशन रखकर तुझे बोलना सिखाया होता,
परन्तु क्या बोला जाय, इसकी समझ देने के लिये समय
न निकाला होता तो ?
क्या बताऊँ तुझे ?
तो तू आज इतना बडा तो हो गया होता, परन्तु
लायक न बन पाया होता ।
तू बडा हो गया होता, परन्तु

समझदार न बन पाया होता ।
मम्मी व नर्स मे यही तो फर्क है ।
पप्पा व नौकर मे यही तो फर्क है ।
नर्स सिर्फ दूध पिला देती है,
परन्तु मम्मी दूध के साथ वात्सल्य भी देती है ।
नौकर सिर्फ कपडे पहना देता है,
परन्तु पप्पा कपडे पहनाने के साथ प्रेम भी देते है ।
नर्स ज्यादा से ज्यादा तो बिगडा हुआ शरीर साफ कर देती है,
परन्तु मम्मी तो शरीर साफ करते-करते एकाध बार ममता भरी
मुस्कान भी दे देती है ।
नौकर गद्दी बिछाकर रवाना हो जाता है,
लेकिन पप्पा बच्चे को नींद न आये, तब तक उसके सर पर
हाथ फिराते रहते है ।
क्या तू समझ सकता है मेरी यह बात ?
यदि बाल्यावस्था मे मम्मी-पप्पा ने अपने सब
कार्यो को, सब प्रसगो को
गौण बनाकर भी तुझे वक्त दिया है, तो फिर
वृद्धावस्था मे मम्मी-पप्पा के आगे तू कई प्रकार के सच्चे या झूठे
बहाने बनाकर समय देने का टालता ही रहे,
तेरी पत्नी भी समय देने के मामले मे आनाकानी
करती ही रहे, यह कहाँ तक उचित है ?
याद रखना । **वृद्ध मम्मी-पप्पा के पास**
फुरसत के सिवाय और कुछ बचा नही होता व जवान पुत्र के पास
मम्मी-पप्पा के पास बैठने की फुरसत नहीं होती ।
इस परिस्थिति का जो दु:खद नतीजा आता है,
इसका मै साक्षी हूँ ।
मै चाहता हूँ कि तेरे स्वय के जीवन मे ऐसी करुण परिस्थिति का सर्जन न हो ।
वात्सल्य देकर मम्मी-पप्पा ने अपना प्रेम दिखाया है,
समय देकर तू उनके प्रेम को सतोष दे ।

महाराजसाहेब,



आपका पत्र पढते-पढते मै रो पडा ।
बाल्यावस्था मे मम्मी-पप्पा ने सिर्फ मेरी
आवश्यकताये ही पूरी की होती
और ज्यादा मे, प्रेम जो समय से ही सबन्धित है, वह न
दिया होता, तो
मेरी क्या हालत हुई होती,
इसकी मै कल्पना भी नहीं कर सकता ।
आपकी बात एकदम सही है ।
वृद्धावस्था बाल्यावस्था जैसी ही निर्बल है ।
दर्शन, भूलना मत कि
बालक के पॉव चलने के लिए कमजोर होते है ।
बालक की समझदारी विकसित नहीं हुई होती है,
तो वृद्ध की स्मृति तेज नहीं होती ।
बालक के दॉत आए नहीं होते,
तो वृद्ध के दॉत टिके नहीं होते ।
बालक के सर पर बाल नहीं होते, तो
वृद्ध के सर के बाल सफाचट हो चुके होते है ।
बालक को सतत मदद की जरूरत पडती है,
और वृद्ध को किसीका सहारा चाहिये ।
बालक को मम्मी की ओर से समय नहीं मिलने पर
वह जीवन मे कच्चा रह जाता है
तो वृद्ध मम्मी-पप्पा को पुत्र समय नहीं देता,
तो वे अपनी अन्तिम अवस्था मे स्वस्थता व प्रसन्नता खो वैठते है ।
सक्षेप मे
कहना हो,
तो ऐसा कहा जा सकता है कि
वृद्धावस्था दुहरी बाल्यावस्था है ।
बच्चे मे तो इतनी समझदारी नहीं,

इसलिये मम्मी-पप्पा की ओर से उसकी उपेक्षा
होने पर भी वह उपेक्षा
उसके हृदय को तोड नहीं देती,
जबकि
मम्मी-पप्पा तो सब कुछ समझते है,
पुत्र के जीवनविकास के लिये उन्होने जो कुर्वानी दी,
वह उनके स्मृतिपथ मे है,
पुत्र की वर्तमान समृद्धि मे स्वय का योगदान कितना है,
यह भी उन्हे बराबर याद है,
इसलिये तो स्वय की असहाय अवस्था मे
जब पुत्र की ओर से उपेक्षा होती है,
पुत्रवधू के ताने सुनने पडते है,
तब वे मानसिक रूप से पूरी तरह से टूट जाते है,
उनका दिल पूरी तरह से टूट जाता है,
उन्हे जीवन से कोई लगाव नहीं रहता,
जीवन के वचे हुए दिन गिन-गिनकर गुजारने के सिवाय
उनके पास और कोई विकल्प वचा नहीं रहता ।
ऐसे ही किसी मॉ-बाप की वेदना को प्रस्तुत करते हुए
किसी शायर ने कहा है
'वृद्धावस्था का यह दौर क्या जुलम ढाता है;
वहू तो क्या, वेटा भी कैसे वचन सुनाता है ?'
एक अन्य शायर ने यही वात अलग ढग से पेश की है
'हाय रे कुदरत !
पतझड के वाद तेरा वसंत है,
वृद्धावस्था की पतझड को तो मौत ही वचाती है ।'
दर्शन, तुझसे मै यही अपेक्षा रखता हूॅ ।
शायर के शव्दो की
इस अवस्था मे से तेरे मम्मी-पप्पा को गुजरना पडे, ऐसी
नालायकी तू तेरे जीवन मे कभी मत करना ।



महाराजसाहेब,

ऑख मे ऑसूओ के साथ यह पत्र मै आपको लिख रहा हूॅ ।
आज मै आपको वचन देता हूॅ कि
शायर ने जिस अवस्था का वर्णन किया है, उसमे से मम्मी-पप्पा को
गुजरना पडे, ऐसा वर्तन मै कभी नहीं करूॅगा ।
पुत्र की ओर से होनेवाली अवगणना
मम्मी-पप्पा के दिल तोड देती है, इस बात के पीछे आपने
जो तर्क पेश किया है,
उस तर्क ने मुझे सचमुच हिलाकर रख दिया है ।
क्योकि
मुझे मेरी दुकान मे इसका अनुभव हो चुका है ।
दुकान का जो आदमी सडक पर भटकता था,
उसे मैने अपनी दुकान मे काम दिया,
नौकरी पर रखा, छ महीने मे उसकी तनख्वाह बढायी,
उसका बेटा बीमार पडा, तब दवा का खर्च मैने उठाया ।
उसी आदमी ने मेरे साथ विश्वासघात किया ।
मैने उसे २५,००० रुपयो की वसूली लेने के लिए भेजा था
और वह २५,००० लेकर रफूचक्कर हो गया ।
दो दिन बाद सारी परिस्थिति स्पष्ट होने पर मै
स्तब्ध हो गया ।
मैने जिसका हाथ पकडा,
उसने मेरे साथ ऐसा वर्तन किया ?
तीन दिन तक तो मुझे रात को नींद नहीं आयी ।
महाराजसाहेब ।
सिर्फ सपत्ति के क्षेत्र मे जिसे मदद की, उस उपकार को भुला
देनेवाले नौकर के पीछे भी यदि मुझे ऐसा दुर्ध्यान हुआ हो,
तो
स्वास्थ्य, संस्करण व संपत्ति इन तीनो क्षेत्रो मे जिस
पिता ने अपने पुत्र को मदद की हो, वह पुत्र पिता के इस

उपकार को भुलाकर उनके साथ तुच्छ वर्तन करने लगे, तब पिता मन से क्षुब्ध हो उठे, दिल से टूट पड़े, इसमें कोई आश्चर्य नहीं लगता।

मै आपको यकीन दिलाता हूँ कि

पप्पा का दिल तोडने मे निमित्त बने, ऐसा वर्तन मै कभी नही करूगा।

और हॉ,

मम्मी-पप्पा को समय देने के मामले मे अबसे मैं

पूर्णत. सावधान रहूँगा

उन्हे आधे घटे का समय देने से भी यदि

उनका जीवन प्रसन्नता से तरबतर हो जाता हो, तो

इससे मै पीछे नहीं हटूँगा।

इस विषय मे आपको कुछ विशेष सूचन करने योग्य

लगता हो, तो आप अवश्य बताईयेगा।

दर्शन,

एक महत्त्वपूर्ण बात की ओर तेरा ध्यान खींचना चाहता हूँ।

जमीन की ताकत

उस पर खाद डालने से बढती है, यह बात जितनी सच है,

उतनी ही सच यह बात भी है कि

उस पर एसिड डालने से उसकी ताकत खत्म हो जाती है।

यही बात जीवन के साथ भी लागु पडती है।

यदि जीवन की इस जमीन पर सतत

धन्यवाद की भावना की खाद पडती रहे, तो

जीवन की यह जमीन सद्गुणो की जो फसल उगाती है,

उसकी कल्पना करनी भी मुश्किल है, परन्तु उस पर

यदि धन्यवाद की भावना की खाद के बदले सतत

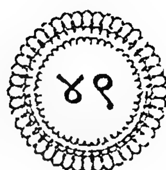
उपेक्षा का, अवगणना का या फरियादो का एसिड ही

पडता रहे, तो जीवन की इस जमीन मे उगी हुई

थोडी-सी भी सदगुणो की फसल जलकर साफ हो

जाती है। इस विषय पर दूसरी बात अगले पत्र मे।

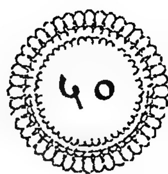
दर्शन,



तुझे शायद एक बात पता नहीं होगी कि
उपेक्षा का भाव, अवगणना का भाव या फरियादी वृत्ति
जीवन को बन्द कर देती है,
जबकि
धन्यवाद का भाव
जीवन को खोल देता है ।
यह बात मै तुझे इसलिये कर रहा हूॅ कि
आज करीब-करीब हर घर मे ऐसी ही परिस्थिति का निर्माण हुआ है कि
उपकार लेनेवाला, अपने उपकारी को,
कहीं भी, कभी भी धन्यवाद नहीं देता
और कहीं थोडी-सी भी प्रतिकूलता महसूस होती है, तो
फरियाद किए बिना नहीं रहता ।
मै तुझसे ही पूछता हूॅ
तेरी उम्र तीस वर्ष है न ?
आज तक तूने मम्मी-पप्पा ने तुझ पर जो ढेर सारे उपकार किए है,
उनके लिए धन्यवाद अधिक बार दिये है या
उनकी ओर से तुझे कहीं कोई कमी महसूस हुई हो, तो
फरियादे अधिक बार की है ?
तू जवाब दे या न दे,
तेरे स्वभाव के आधार पर मै कह सकता हूॅ कि
धन्यवाद देने का विचार तो तुझे कभी आया ही नहीं होगा ।
और
फरियाद करने का एक अवसर भी तूने बाकी नहीं रखा होगा ।
आपने मुझे पढा-लिखाकर तैयार किया
इसके लिये धन्यवाद नहीं,
परन्तु 'आपने मुझे व्यवसाय मे आगे बढने के लिये
आवश्यक रकम नहीं दी,
इसके लिये फरियाद ।

'आपने अपनी सुख सुविधाओं को गौण बनाकर भी मेरी देखभाल की' इसके लिये धन्यवाद नहीं,
परन्तु
'आपने मुझे आगे बढने की स्वतंत्रता नहीं दी'
इसके लिए फरियाद ।
दर्शन,
तेरी डायरी मे लिख रखना कि
धन्यवाद का स्थान फरियाद तभी ले सकती है,
जब हृदय मे से स्नेह व प्रेम का स्रोत
बन्द हो गया हो । यदि वह स्रोत बहना जारी हो, तो
उसमें फरियादो का कचरा
बहे बिना नहीं रहता ।
उपकारी स्वय अपने से हुई गलती या
अपने से रह गयी क्षति को कबूल भी करते है,
फिर भी आश्रित यह सुनने के लिए तैयार नहीं होता ।
तू चाहता है न कि
मम्मी-पप्पा की ओर से तुझे प्रगट रूप मे स्नेह मिलता रहे ?
तो इतना करने लग ।
जिन मम्मी-पप्पा ने तुझे दिल देने मे कोई कमी नहीं रखी,
उन मम्मी-पप्पा के आगे धन्यवाद के शब्द बोलने के लिये
होठ बन्द मत रख ।
और फरियाद के शब्द बोलने के लिये
होठ कभी मत खोल ।
तूने कल्पना भी न की होगी ऐसा सुन्दर परिणाम मिलेगा ।
पढी है किसी कवि की ये पंक्तियाँ ?
'जिसकी जीभ मे मिठास, उसका हर दिल मे निवास,
जिसकी जीभ मे जहर, उसका वैरी सारा शहर ।'
धन्यवाद के शब्द अमृत है,
तो फरियाद के शब्द जहर है ।

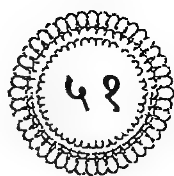
महाराजसाहेब,



मेरे लिये आपके द्वारा किया गया अनुमान एकदम सही है ।
मुझे याद नहीं आता कि मैने कभी मम्मी-पप्पा के आगे
धन्यवाद के शब्द बोले हो ।
आज तक फरियाद के शब्द ही बोलता आया हूँ ।
अपूर्णता की फरियाद,
अपेक्षाभग की फरियाद,
अवगणना की फरियाद ।
हो सकता है कि मेरे ऐसे गलत अभिगम ने ही मम्मी-पप्पा को
मेरी अवगणना करने के लिये मजबूर किया होगा ।
परन्तु मेरे मन मे यह सवाल उठता है कि
सूर्य अपने स्वभाव से ही प्रकाश फैलाता है,
चन्द्र अपने स्वभाव से ही चादनी फैलाता है,
नदी अपने स्वभाव से ही बहती रहती है,
वृक्ष अपने स्वभाव से ही छाया देता है ।
सक्षेप मे,
धन्यवाद के शब्दों की अपेक्षा रखे बिना ही सिर्फ अपने
स्वभाव से ही यदि ये सूर्य-चन्द्र आदि
जगत पर परोपकार करते रहते है,
तो फिर इन्सान को स्वयं द्वारा होनेवाले उपकारो के बाद
धन्यवाद के शब्द सुनने की
अपेक्षा क्यों रखनी चाहिये ?
दर्शन,
यह तू नहीं बोल रहा,
तेरे हृदय मे अड्डा जमाये बैठा कृतघ्नता का भाव बोल रहा है ।
यह प्रश्न तेरा नहीं,
तेरे मन मे अड्डा जमाये बैठी विकृत बुद्धि का है ।
क्या तू जानता है ?
इस देश ने सूर्य को नमस्कार किए है,

नदी को माता माना है,
चन्द्र को 'मामा' कहा है और
वृक्ष को जीवन माना है ।
इसका कारण ?
कृतज्ञता का गुण ।
बुद्धि की निर्मलता ।
उपकार करनेवाला चाहे स्वभाव से उपकार करता हो,
परन्तु
उपकार का भाजन बननेवाला इस उपकार को याद भी न रखे,
उस उपकारी के प्रति अहोभाव से अपने दिल को भीगा
भी न रखे, तो
समझ लो कि वह पत्थर दिल का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।
तूने जो दलील उठायी है न,
उसका अमल तेरे स्वय के जीवन मे करके देखना ।
तुझे पता चल जाएगा कि
किये जानेवाले उपकार की कोई कद्र भी न करे,
फिर भी उपकार की भावना टिकाये रखना, यह कोई
मामूली बात नहीं ।
तुझे शायद पता न हो, परन्तु
वास्तविकता यह है कि **यह दुनिया आज थोड़ी-बहुत भी
अच्छी दिखती हो, तो इसका श्रेय कृतज्ञता गुण को जाता है ।**
उपकार लेनेवाला,
उपकार से लाभान्वित होनेवाला,
यत्र-तत्र सर्वत्र उपकारी के उपकार का
धन्यवाद के शब्दो से अभिवादन ही करता चला आया है ।
और इसीका परिणाम यह आया है कि उपकार करनेवाले के
मन मे उपकार करते ही चले जाने की भावना सदा बनी
रहती है । शक्ति के अनुसार उपकार करना उन्होंने जारी ही रखा है ।
यदि यह उन्होंने बन्द कर दिया होता, तो ?

दर्शन,



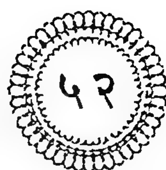
एक बात तेरे दिल की दीवार पर खुदवाकर रखना कि

जिसके जीवन में कृतज्ञता नहीं,
स्वयं पर हो रहे उपकारो को समझने की दृष्टि नहीं,
उपकारी के प्रति अन्तर में कोई सद्भाव नहीं,
वह इन्सान करुणा का अधिकारी नहीं बन सकता ।

सक्षेप मे,
करुणापात्र बने रहने की पहली शर्त है-
दिल को कृतज्ञतायुक्त बनाये रखना ।
क्या बताऊँ ?
इस दुनिया मे आज सपत्ति का या स्नेह का
इतना अकाल नहीं,
जितना अकाल कृतज्ञता गुण का है ।
जितना अकाल धन्यवाद के शब्दो की अभिव्यक्ति का है ।
मै जानता हूँ कि
तेरे पास काफी सपत्ति है,
उदारता भी है तू दिल खोलकर सपत्ति का व्यय भी कर रहा है ।
परन्तु अब एक प्रयोग शुरू कर ।
धन्यवाद के शब्दो का प्रयोग भी दिल खोलकर कर
और इसकी शुरूआत घर से कर,
घर मे भी मम्मी-पप्पा से कर ।
हालाँकि, मन ऐसे समझाया करता है कि
मेरे हृदय मे तो मम्मी-पप्पा के प्रति प्रेम तो है ही,
उनके उपकारो की स्मृति तो दिल मे है ही ।
क्या यह जरूरी है कि मुझे उनके आगे उनके इन उपकारो के
बदले धन्यवाद के शब्द बोलने ही चाहिये ?
परन्तु, याद रखना,
यह आवाज मन की है, अन्त करण की नहीं,

बुद्धि की है, हृदय की नहीं,
अह की है, समर्पण की नहीं ।
यदि मन मे उपकारो की स्मृति है ही, तो उसे शब्दो मे
प्रगट करने मे हर्ज ही क्या है ?
और वैसे भी ये शब्द हर किसीके पास कहॉ वोलने है ?
मम्मी-पप्पा के समक्ष ही तो बोलने है न ?
परन्तु नहीं,
मन किसका नाम ?
वह तुझे संपत्ति का उपयोग खुले दिलसे न करने देगा
परन्तु
धन्यवाद के शब्दों का उपयोग करने से खास रोकेगा ।
वह तुझे उदार बनने देगा,
किन्तु
कृतज्ञ बनने से खास करके रोकेगा ।
क्योकि उसे अहं पुष्ट करना है
और अह तोडे बिना तो कृतज्ञ नहीं बना जा सकता,
अथवा धन्यवाद के शब्द अभिव्यक्त नहीं किए जा सकते,
परन्तु
इतने लंबे पत्रव्यवहार के बाद मै तुझसे यही अपेक्षा रखूँगा कि
मन की इस चालबाजी मे फॅसे विना तू सीधा
अन्त करण के पास पहुँच जा ।
एक वार मर्दानगी वताकर
मम्मी-पप्पा के समक्ष धन्यवाद के शब्द अभिव्यक्त करना
शुरू कर दे ।
वादल हट जाने पर सूर्य के प्रकाश का जो अनुभव इन्सान को होता है,
उससे अनेक गुणा अच्छा अनुभव अह का वादल हट जाने पर
मम्मी-पप्पा के प्यार का तुझे होगा ।
यह मै तुझे यकीन के साथ कहता हूँ ।

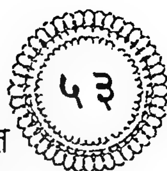
महाराजसाहेब,



आपका आभार व्यक्त करने लिये
मेरे पास कोई शब्द नहीं ।
आपका पिछला पत्र पढने के बाद
मन व अन्त करण के बीच
जबरदस्त सघर्ष चला ।
'अब इतने वर्ष बाद मम्मी-पप्पा के समक्ष धन्यवाद के शब्द अभिव्यक्त करने जाने का तेरा निर्णय 'नाटक' ही कहलायेगा,
यह दलील बुद्धि ने की ।
देर हुई तो हुआ ? अभी भी धन्यवाद के शब्द अभिव्यक्त करूँगा, तो मम्मी-पप्पा के कलेजे को अवश्य ठंडक पहुँचेगी ।
यह दलील हृदय ने की ।
आपको यह बताते हुए मुझे अत्यन्त आनद हो रहा है कि
बुद्धि हारी, हृदय जीता, मन हारा, अन्त करण जीता ।
रात को ही जा पहुँचा मम्मी-पप्पा के पास ।
शुरूआत मे घर की व व्यवसाय की थोडी बात-चीत की, बाद मे धीरे से हृदय की बात पेश की ।
पप्पा ।
इतने वर्षो बाद आज पता चला कि
मेरे जीवन को यहाँ तक लाने के लिये आपने कितना योगदान दिया है ।
शरीर का विकास होने पर भी
मुझमे समझदारी का विकास जितना होना चाहिये, उतना न भी हुआ,
फिर भी आप मुझे सतत प्रेम ही देते रहे,
एक की एक भूल जीवन मे दुहराता ही गया,
फिर भी आप मुझे सुधरने का अवसर देते ही रहे ।
मूर्ति बनाते हुए शिल्पी के हाथ से पत्थर टूट जाये, तो
वह नया पत्थर ले लेता है,
चित्र बनाते हुए चित्रकार के हाथो कागज बिगड जाये, तो

वह नया कागज ले लेता है,
फर्नीचर बनाते हुए बढई के हाथों लकडा टूट जाय, तो
वह नया लकडा ले लेता है,
परन्तु जीवन-निर्माण मे कहीं थोडी-सी भी कमी रह जाय, तो
सारा जीवन बरबाद हो जाय ।
यह वास्तविकता बराबर समझ चुके आपने मेरे जीवन के
सम्यक् निर्माण मे कोई कमी नहीं रखी ।
आपने मुझे प्रेम तो दिया ही, परन्तु शरीर के क्षेत्र मे मुझे निर्भय भी बनाया
आपने मुझे वात्सल्य तो दिया ही,
परन्तु मन के क्षेत्र मे मुझे मजबूत भी बनाया ।
मेरे शरीर की स्वस्थता व मन की प्रसन्नता के लिए तो
आपने सावधानी रखी ही,
मेरी आत्मा की पवित्रता टिकी रहे, इसके लिये आपने
मुझमें सुसंस्कारों का आधान भी किया ।
किन शब्दो मे मै आपके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करूँ,
यह मेरी समझ मे नहीं आ रहा ।
महाराजसाहेब !
मै नहीं जानता कि मै यह सब किस तरह बोल पाया,
परन्तु मेरे इन शब्दो ने पप्पा को हिलाकर रख दिया ।
वे जहाँ बैठे थे, वहाँ से उठकर मेरे पास आये
और मै कुछ सोचुँ-विचारूँ, इससे पहले तो
मुझे गले लगाकर रो पडे ।
उनकी आँखो मे से बहते हुए हर्ष के आँसूओ ने मुझे भी हिलाकर रख दि
उनके कधे पर सर रखकर मै भी रोने लगा ।
मेरी पीठ पर वात्सल्यसभर हाथ
फिराते हुए पप्पा यही बोले.
बेटा ! इतने वर्ष तू कहाँ खो गया था ?

दर्शन,



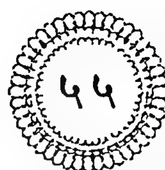
तेरा पत्र पढकर मेरी ऑखे भर आयीं ।
धन्यवाद के शब्दो की अभिव्यक्ति के तेरे अनुभव ने मुझे आनदित तो किया ही, परन्तु मेरी ऑखो के समक्ष एक ऐसा प्रसग उपस्थित कर दिया, जो तुझे बताये बिना मै नहीं रह सकता ।
शायद चौदह-पद्रह वर्ष की बात है ।
उस वक्त मै महाराष्ट्र जलगॉव से अतरिक्षजी के
विहार मे था ।
भुसावल मे हमने करीब आठ दिन की स्थिरता की थी,
उस वक्त वहॉ की एक स्कूल के वाइस प्रिसिपल मुझे
बालको के समक्ष प्रवचन देने के लिये पधारने का
आमत्रण देने आये ।
उनका आमत्रण मैने स्वीकार लिया ।
नियत वक्त पर वाइस प्रिसिपल के साथ मै स्कूल मे गया ।
करीब १० से १५ वर्षीय बच्चो के समक्ष
दिये गये उस प्रवचन मे
'माता-पिता के उपकार' इस विषय पर
मैने समझाया । उपस्थित सर्व बच्चो ने प्रतिदिन
मॉ-बाप के पॉव छूने का नियम लिया ।
प्रवचन पूर्ण करके मै उपाश्रय की ओर आने के लिए निकला ।
वाइस प्रिसिपल मेरे साथ ही थे ।
उन्होंने मुझसे विनति की ।
'महाराजसाहेब । मेरा घर रास्ते मे ही आता है ।
दो मिनट के लिए ही सही,
मेरे घर आप जरूर पधारियेगा ।
मुझे बहुत खुशी होगी ।'
उनकी विनति मैने स्वीकारी ।
करीव आठ मिनट मे उनका घर आ गया ।
उन्होंने मुझे अन्दर पधारने की विनति की ।

मैने घर मे प्रवेश किया ।
मेरे पीछे वाइस प्रिंसिपल ने भी प्रवेश किया ।
मै कुछ सोचुँ-समझुँ, इससे पहले तो
दीवानखाने के एक कोने मे बैठी हुई एक वृद्ध माजी के
पॉवो मे गिरकर वे जोर-जोर से रोने लगे ।
उनके रुदन से वे वृद्ध मांजी अपनी जगह पर से
खडी हो गयी व वाइस प्रिंसिपल को गले लगाकर रोने लगीं ।
पल-दो पल के लिए मै तो स्तब्ध रह गया ।
परन्तु उसके बाद वह वृद्धा जो शब्द बोली, उन शब्दो ने
मुझे हिलाकर रख दिया ।
'महाराजसाहेब ! यह मेरा पुत्र है और मै इसकी मॉ हूँ ।
मेरी उम्र ८७ बरस की है,
पुत्र की उम्र ६५ बरस की है ।
यह मेरा इकलौता पुत्र है, परन्तु पिछले ३५ साल से
मेरे साथ बात नहीं करता ।
मैने कई बार इसके आगे आचल पसारकर कहा
था कि बेटे ! एक बार तो मॉ के साथ बात कर,
मुझे और कुछ नहीं चाहिये ।
परन्तु वह अपनी जिद्द पर अटल रहा ।
मै तरसती ही रही, तडपती ही रही ।
परन्तु आज मै कुछ समझ नहीं पा रही कि इसे क्या हो गया है ?
मेरा पुत्र मेरे पॉवो मे गिरा इस बात ने मुझे खुशी के
मारे पागल बना दिया है ।
महाराजसाहेब ! **माँ से बिछड़े हुए पुत्र की वेदना तो आपने
शायद सुनी होगी, परन्तु ३५-३५ वर्ष से एक ही
घर में रहने पर भी जो माँ अपने पुत्र से विछड़ गयी
हो, उसकी वेदना तो मैं ही जानती हूँ । भगवान (?)
ऐसी वेदना किसीको न दे !** आपने इस उम्र मे मेरा
पुत्र मुझे लौटाकर मेरा मरण सुधार दिया है ।'



दर्शन,
जीवनसागर के किनारे बैठी हुई एक माँ,
उस वक्त
अपने पुत्र को पाकर
कैसी प्रसन्नता महसूस कर सकती है, यह मैने प्रत्यक्ष नजरो से
देखा है ।
३५-३५ वर्ष से
अपने अह को सलामत रखकर जीवन जीता हुआ पुत्र
एक ही क्षण मे
अपने अह का विसर्जन करके
पश्चात्ताप की पावन गगा मे डूबकी मारते-मारते
कैसा हल्का बन सकता है, यह मैने आँखो से
देखा है
और इसीसे तेरे जैसे प्रत्येक नौजवान को
खास सलाह देता हूँ कि
जीवन मे कभी भी ऐसा वर्तन मत कर बैठना कि
जो वर्तन मम्मी-पप्पा के कलेजे को तपानेवाला बने ।
तू जानता है ?
पप्पा घर का मस्तक है, तो
मम्मी घर का हृदय है ।
शरीर मे यदि हृदय की अवगणना की
जाय, तो जीवन समाप्त हो जाता है ।
घर मे
मम्मी की अवगणना की जाय,
तो घर की प्रसन्नता समाप्त हो जाती है ।
शरीर मे मस्तक की उपेक्षा की जाय,
तो जीवन बिखर जाता है ।
घर मे
पप्पा की अवगणना की जाय, तो

घर अस्त-व्यस्त हो जाता है । हॉ,
हो सकता है कि
पुत्र व पुत्रवधू को अपने अह के नशे मे
ऐसे नुकसान न भी दिखते हो,
ऐसा नुकसान उनके
मन मे बहुत महत्त्वपूर्ण न भी लगता हो,
परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि
इस नुकसान से घर उगर जाता है ।
देखा है न तूने रेती का ढेर ?
उसके प्रत्येक कण होते है साथ मे,
फिर भी होते है एकदम अलग ।
इसका एक ही कारण है,
प्रत्येक कण रुक्ष होता है ।
स्निग्धता का अश भी उसमे नहीं होता ।
जिस घर के सदस्य ऐसे संवेदनहीन, प्रेमहीन
वात्सल्यहीन होते हैं,
उनके जीवन होते हैं-पर्णहीन बने हुए
वृक्ष जैसे ।
उस पर प्रसन्नता का पखी कभी नहीं बैठता,
उस पर सद्गुणो का फल कभी नहीं लगता,
उस पर औचित्य का पुष्प कभी नहीं खिलता,
उस पर उदारता के पत्ते कभी नहीं आते,
उसकी छाया किसीके भी जीवन के लिये विश्रामरूप नहीं बनती,
उसकी डाली पर मस्ती की कोयल कभी नहीं टहुँकती,
उसका अस्तित्व किसीके लिए आनन्दरूप नहीं बनता ।
किसी शायर की ये पक्तियॉ पढ -
'कभी मन की बही न देखी,
ज़िदगी बनी मानो दिवालिये की ।'
दर्शन, बचा लेना तेरी जिदगी को इस कलक मे ।



महाराजसाहेब,

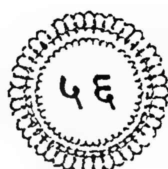
भूसावल के वाइस प्रिसिपल का आपने जो प्रसग पत्र
मे लिखा था, वह पढकर ऑखो मे से ऑसू बहने लगे ।
३५-३५ वर्ष से एक ही घर मे और एक ही साथ रहने पर भी
जिस मॉ के साथ पुत्र ने बोलना बन्द किया,
उस मॉ की कैसी हालत हुई होगी
यह कल्पना करते हुए भी कॉप उठता हूॅ ।
प्रश्न तो यह होता है कि
क्या अह इतना निर्दय बन सकता होगा ?
क्या बुद्धि इतनी विकृत बन सकती होगी ?
क्या सवेदनशीलता इस हद तक मर-मिट चुकती होगी ?

दर्शन,

अहं जो जुल्म ढाता है,
उस जुल्म के आगे एटम बॉम्ब का जुल्म तो किसी बिसात मे नहीं ।
शायद कहना हो, तो ऐसा कहा जा सकता है कि
एटम बॉम्ब के मूल मे भी है तो
अह का ही जुल्म ।
यदि अह न भडकाये,
तो किसी भी शहर पर एटम बॉम्ब
कैसे फेका जा सकता है ?
यदि एटम बॉम्ब
दुर्जनो के साथ सज्जनो को भी मार डालता है,
इन्सानो के साथ पशुओ को भी खत्म कर देता है,
पशुओ के साथ वनस्पति को भी जला देता है,
वनस्पति के साथ पानी को भी दूषित कर देता है,
पानी के साथ पर्यावरण के लय को भी असर पहुॅचाता है
और साथ ही साथ बरसो तक उस शहर
पर अपना गलत असर छोडते जाता है ।
वह एटम बॉम्ब यदि अह का सर्जन हो, तो

दर्शन,
मेरा तुझसे यही कहना है कि इस अह को
तू मामूली मत मान बैठना ।
सर्प ही भयंकर नहीं,
सर्प का बच्चा भी भयंकर ही है ।
एटम बॉम्ब फेंकने के लिये सज्ज करे,
वही अहं भयंकर नहीं,
किसीके साथ भी 'तोड़ने' के लिये मन को तैयार करे,
वह अहं भी भयंकर ही है ।
तू तेरी स्वय की ही आज तक की मनोवृत्ति का
निरीक्षण करता जा न ? उपकारी
मम्मी-पप्पा को भी 'देख' लेने के लिए तुझे किसने भडकाया था ?
मम्मी-पप्पा से अलग हो जाने का भूत
तेरे मनमे किसने सवार किया ?
मम्मी-पप्पा के प्रति दुर्भाव से तेरे चित्त को कलुपित किसने किया ?
धन्यवाद के शब्द अभिव्यक्त करने के बदले
फरियादे ही करते रहने की वृत्ति का शिकार तुझे किसने बनाया ?
'मम्मी-पप्पा मे अक्ल कम है'
ऐसा विचार करने के लिए तुझे किसने मजबूर किया ?
तुझे एक ही परिबल दिखेगा
'अह ।'
मन के इस भयकर सर्जन से परेशान होकर ही एक शायर ने लिखा है कि
'हमारा दुःख तो कोई दुःख नहीं,
राई का बनाया पहाड़;
अमृत जैसी धरती पर, विष के बोये पेड़ ।'
राई जैसे दु.ख को पर्वत जैसा माननेवाले व
अमृत जैसे सबन्ध मे विष बोनेवाले
इस अहं को दूसरे क्रम पर रखने के लिए तू तत्पर बना है,
इसके लिये तुझे लाख-लाख धन्यवाद ।

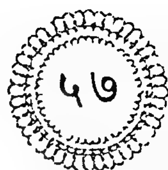
महाराजसाहेब,



आपकी बात सच है ।
'मै कुछ हूँ' और
'मै कुछ जानता हूँ',
अह के इन दो स्वरूपो का शिकार बने हुए मेरे पास
आज तक तो मानव का चोला ही था ।
परन्तु आपके द्वारा दी गयी समझ के बाद लगता है कि
मै सही अर्थ मे मानव बन रहा हूँ ।
मैने पूर्व के एक पत्र मे आपको पप्पा के आगे धन्यवाद के शब्द
अभिव्यक्त करने के बाद जिस प्रेमसभर वातावरण का सर्जन हुआ,
उसकी बात लिखी थी ।
ऐसा हुआ कि
दूसरे दिन दुपहर मे मेरी पत्नी
मम्मी के पास पहुँच गयी ।
शादी के बाद पुत्रवधू के मुख से मम्मी ने जो शब्द
कभी नहीं सुने थे,
वे शब्द सुनकर मम्मी तो स्तब्ध ही हो गयी ।
उसने अर्थात् मेरी पत्नी ने बात की शुरूआत ही इस तरह की ।
'मम्मी !
आप मुझे बहू मानती है या पुत्री ?'
'तुझे भला ऐसा क्यो पूछना पडा ?'
'वह इसलिये कि आज तक चाहे मै आपको 'मम्मी' कहकर
बुलाती थी, परन्तु मैं आपको 'सासु' ही मानती थी
और इसी कारण से आपके साथ सतत सघर्ष किया करती थी ।
आपके साथ कर्कश भाषा मे ही बात करती थी ।
आपके पुत्र के कान मे भी सतत आपके विरुद्ध जहर
उडेला करती थी ।
परन्तु,
गभीरता से विचार करने पर आज लगता है कि यह मेरी भूल थी ।

बीस वर्ष की उम्र मे तो
मै इस घर मे आयी ।
फिर भी पहले ही दिन इस घर के सब सदस्यो को
जो अधिकार मिले थे,
वे अधिकार आपने मुझे दे दिये ।
इस घर मे रही हुई
स्थावर-जगम पूजी के बारे मे मुझे बताया गया ।
अलमारी की चाबी
मेरे हाथ मे सोपी गयी ।
घर की गुप्त बाते भी मुझ पर
किसी भी प्रकार का शक किए बिना मेरी उपस्थिति मे ही
होने लगी ।
मेरी सुख-सुविधा के लिये घर मे
कुछ महगी सामग्रियाँ भी बसायी गयी । सक्षेप मे,
यह घर मानो मुझे ही सोप दिया गया था, फिर भी
बुद्धि की विषमता ने मेरी ऑखो पर हक व अह के
अधेपन का सर्जन कर दिया और
इसी कारण से इस घर मे दूध मे शक्कर की तरह घुलने
के बदले पानी मे पडनेवाले तेल की तरह मै अलग ही रही,
सघर्ष करके वातावरण को कलुपित ही वनाती रही ।
मम्मी ! मेरे इन तमाम गुनाहो को आप माफ तो कर ही देगी,
परन्तु आज मैं आपके पास एक ही भीख मांगने आयी हूं ।
मैंने आपके आज मेरे हृदय मे 'मम्मी' के रूप मे
बिराजमान कर दिया है ।
आप मुझे आपके हृदयमें 'पुत्री' के रूप मे
स्थान दे दीजिये । इससे वढ़कर मुझे और कुछ नही चाहिये ।
महाराजसाहेव !
पत्नी के इन शव्दो से मम्मी के प्रतिभाव के
असर की वात मै आपको अगले पत्र मे लिखुंगा ।

महाराजसाहेब,



पत्नी के मुख से बोले गये शब्द सुनकर
मम्मी खडी भी कैसे रहती ?
वह तो मेरी पत्नी को गले लगाकर रोने ही लग पडी ।
मेरी बहन को ससुराल जाते समय विदा करते हुए
मम्मी की ऑखो मे अश्रूओ का जो महासागर उमड पडा था,
वही महासागर फिर से उनकी ऑखो मे उमड आया ।
वह रोते-रोते इतना ही बोली,
'बेटी !
अब फिर से कभी ऐसी भीख मागकर
तेरी मम्मी को शर्मिन्दा मत करना ।
बेटी को मम्मी प्रेम दे सकती है,
भीख थोडे ही दे सकती है ?'

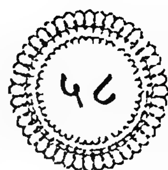
महाराजसाहेब !

स्वर्ग की बाते तो कई बार सुनी थी, परन्तु
स्वर्ग का अनुभव उस दिन पहली बार ही हुआ ।
आप शायद नहीं मानेगे,
परन्तु
उस दिन सारे परिवार की रसोई मम्मी ने ही बनायी ।
मेरी पत्नी को हाथ तक न लगाने दिया
और आश्चर्य की पराकाष्ठा का सर्जन तो तब हुआ,
जब मम्मी ने अपने हाथो से बनाया हुआ कसार
अपने हाथो से जबरदस्ती मेरी पत्नी के मुँह मे डाला ।

महाराजसाहेब,
कहीं सुना था कि
इस जगत के सर्व जीवो को प्रेम देने के लिये परमात्मा
स्वयं पहुँच नहीं सकते, इसीलिये उन्होने माता का सर्जन किया है ।
सुना हुआ यह वाक्य सच है या गलत,
यह तो मै नहीं जानता, परन्तु

उस दिन मम्मी के द्वारा मेरी पत्नी को जो प्रेम मिला है,
जो वात्सल्य मिला है, जो स्नेह मिला है,
वह देखते हुए इतना तो जरूर लगा है कि
परमात्मा की मेरे कुटुब पर भरपूर करुणा है ।
नहीं तो यह सभव ही कैसे होता ?
आपसे एक प्रश्न पूछूॅ ?
क्या प्रेम इतना उदार बन सकता है ?
सामनेवाले की चाहे जैसी बडी गलतियो को भी इतनी
आसानी से भूल सकता है ?
इसके पीछे क्या रहस्य है ?
दर्शन,
जिस प्रकार आग चाहे जैसे कडक पदार्थो को भी
खा जाती है, उसी प्रकार प्रेम चाहे जैसे जालिम
दोषो को भी पी जाता है ।
और इसमे भी मॉ-बाप का पुत्र के प्रति प्रेम,
गुरु का शिष्य के प्रति प्रेम
और
भगवान का भक्त के प्रति प्रेम,
इसकी उदारता का, सहनशीलता का कोई वर्णन ही नहीं हो सकता ।
ये सब प्रेम क्रमश· एक-दूसरे से बढकर है ।
हालॉकि, यह प्रेम कभी कठोर बनता हुआ नजर भी आता है,
यह प्रेम कभी-कभी पीडाकारक भी लगता है,
परन्तु यह प्रेम होता है-सुई जैसा ।
आगे छेद जरूर करता है, परन्तु पीछे सीये बिना भी नहीं रहता ।
अन्तर से चाहता हूॅ कि मम्मी-पप्पा के
तेरे प्रति कठोर व्यवहार को
तू कैंची जैसा मत मानना, सुई जैसा मानना ।
कैंची सिर्फ काटती है, जबकि सुई छेद करके सीती भी है ।
मेरे कहने का तात्पर्य तू समझ गया होगा ।

महाराजसाहेब,



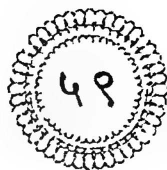
आपने कैची व सुई का फर्क समझाकर कमाल की
बात की है ।

**खेद की बात यह है कि मुझे व मेरी पत्नी को आज तक
मम्मी-पप्पा की कठोरता मे कैची के ही दर्शन हुए हैं,
सुई के दर्शन हुए ही नहीं ।**

और इसी कारण से जब भी उनकी ओर से कठोर व्यवहार
हुआ है, तब-तब उनके प्रति हमे दुर्भाव ही हुआ है ।
खैर, आपने सम्यक् समझ देकर हम दोनो पर
बहुत बडा उपकार किया है ।
फिर भी एक प्रश्न पूछुँ ?
पत्नी का मम्मी के साथ सतत मतभेद हुआ ही करता हो,
पत्नी व मम्मी के बीच घर मे रोज सघर्ष हुआ ही करते हो,
पत्नी को कुछ पसद न आया हो, उसका असर मुझ पर और
मम्मी का कुछ पसद न आया हो, उसका असर पप्पा पर
हुआ ही करता हो और इस कारण से
घर का वातावरण सतत तनावपूर्ण ही रहता हो,
तो ऐसे सयोगो मे घर की प्रसन्नता टिकाने के लिये क्या किया
जाय ? कुछ मामलो मे
मम्मी का अभिगम गलत भी होता है,
उस वक्त मम्मी के आगे मै मेरी पत्नी का पक्ष लेता हूँ, तो
वह मुझे सुना देती है कि तुझे हमेशा मै ही गलत लगती हूँ
और
कभी-कभी पत्नी का अभिगम गलत होने पर उसे कहने जाता हूँ,
तो वह मुझे सुना देती है कि आपको हमेशा अपनी माँ ही
सही लगती है ।
ऐसी स्थिति मे क्या किया जाय ?
आप नहीं मानेगे, परन्तु जब भी घर मे ऐसे वातावरण
का सर्जन होता है, तब मै ऑफिस जाने के लिये घर से

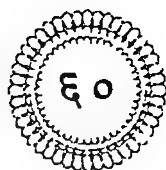
जल्दी निकल पडता हूँ
और रात को ऑफिस से घर देर से लौटता हूँ।
आने के बाद पत्नी मम्मी की फरियाद करती है,
तो उस पर गुस्से हो जाता हूँ
और
मम्मी पत्नी के लिए फरियाद करती है, तो उसे कह देता हूँ कि
तुम दोनो के झगडे मे
मुझे शामिल मत करो।
तबेले में दो भैंसें मस्ती से साथ मे रह सकती हैं
और न जाने क्यों,
घर में तुम दोनों को मिलजुलकर रहना ही नही आता।
महाराजसाहेब !
मै बराबर समझता हूँ कि मेरा यह अभिगम
उचित नहीं।
मुझे इसमे से कोई सम्यक् रास्ता निकालना ही चाहिये।
जिसके मुझ पर अनन्त उपकार है,
उस मम्मी पर पत्नी गलत आरोप चढाती हो या
पत्नी मम्मी को परेशान करती हो,
तो मुझे मम्मी के पक्ष मे रहकर पत्नी को सम्यक् सीख
देनी ही चाहिये
और
जिस पत्नी ने मेरे भरोसे अपने माँ-बाप को छोडा,
घर छोडा, उस पर मम्मी चाहे जैसे आक्षेप किया
करती हो या उसकी आवश्यकताओ पर मम्मी अनावश्यक
प्रतिबंध लगाती हो, तो पत्नी का पक्ष लेकर मुझे कडक शब्दो मे
मम्मी से कुछ कहना ही चाहिये।
मै यह समझता हूँ, फिर भी इस पर अमल नहीं कर सकता।
साधुजीवन की मर्यादा मे रहकर आप
इस विषय पर कुछ मार्गदर्शन दे सकेंगे ?

दर्शन,



इस विषय मे तुझे क्या सलाह दूँ,
यह सोचने ही सोचने मे तीन दिन
निकल गये ।
उसके बाद जो सूझा, वह तुझे मै इस पत्र द्वारा बता रहा हूँ ।
एक बात से तो तू सहमत है न कि
पत्नी पसन्द की जा सकती है,
परन्तु मम्मी तो जो मिली होती है,
पसन्द करनी ही पड़ती है ।
अर्थात्
पत्नी के लिए पसन्द का विकल्प है,
परन्तु मम्मी के लिए तो पसन्द का कोई विकल्प ही नहीं ।
एक बात पूछूँ ?
तेरी इच्छा थी कि मम्मी की आवाज बिलकुल
स्पष्ट हो, परन्तु ऐसा हुआ है कि
मम्मी की जुबान तोतली है,
मम्मी बोलते हुए रुकती है ।
तू क्या करता है ?
मम्मी की तोतली जीभ भी तुझे चला ही लेनी पडती है न ?
तो मेरा तुझसे यही कहना है कि
नापसन्द तोतली जीभ तुझे मान्य है, तो
फिर नापसन्द तुच्छ जीभ तुझे अमान्य क्यो ?
ऐसी जीभ के लिये
मम्मी के साथ रोज सघर्ष क्यो ?
मम्मी के प्रति मन मे सतत दुर्भाव क्यो ?
हालाँकि, मुझे पता है कि
तोतली जीभ को शरीर की त्रुटि मानकर स्वीकारा
जा सकता है, परन्तु तुच्छ जीभ तो मन का दोष होने से
इसका स्वीकार करना मुश्किल होता है ।

दुनिया मे, देश मे, राज्य मे, शहर मे, गॉव मे
ज्यादातर झगडो का श्रेय (?) तुच्छ, कर्कश
जीभ को जाता है ।
'बोले गये शब्दो की जोड-बाकी
करता रहा है यह मन,
प्रत्येक बात मे सौगन्ध खानी पडती है,
कैसा है अपना जीवन ?'
किसी शायर की ये पक्तियॉ भी यही बात करती है कि
शब्द अत्यन्त प्रभावशाली है ।
बिना शक्कर का दूध चलाया जा सकता है, परन्तु
राखवाला दूध कैसे चल सकता है ?
प्रेम बिना के शब्द स्वीकारे जा सकते है, परन्तु
कडवाहट भरे शब्द कैसे चल सकते है ?
मम्मी के मुॅह मे से ऐसे ही शब्द निकला करते हो
और इस कारण से तेरी पत्नी परेशान हो जाती हो,
तो इसमे आश्चर्य नहीं ।
फिर भी मै ऐसा मानता हूॅ कि तेरी पत्नी मम्मी के
ऐसे शब्दो को 'स्वभाव' के खाते मे जमा करने का
सत्त्व दिखा सके, तो
सयुक्त कुटुब टूटने से जरूर बच सकता है
व मम्मी के दिल को टूटने से भी बचाया जा सकता है ।
एक बात खास याद रखना कि
शरीर के क्षेत्र मे पुरुष ज़रूर बहादुर है,
परन्तु मन के क्षेत्र मे स्त्री जैसी सहनशीलता
तो किसीके पास नहीं ।
कबूल करता हूॅ कि, तेरी मम्मी स्त्री है, परन्तु
तेरी पत्नी भी स्त्री ही है न ?
एक स्त्री दूसरी स्त्री को
अपना ले, इसीमे स्त्रीत्व का गौरव है ।



दर्शन,

तूने मम्मी के गलत स्वभाव के सामने पत्नी की सहनशीलता की बात उठायी है न ? परन्तु मैने पप्पा के गलत स्वभाव के सामने पुत्र की प्रसन्नता की एक घटना की जो अनुभूति की है, वह तुझे इस पत्र मे बताना चाहता हूँ ।

बबई के एक उपनगर का किस्सा है ।

पप्पा का स्वभाव इस हद तक खराब है, जिसकी तू कल्पना नहीं कर सकता, घर मे कटु शब्द बोलना तो उनकी आदत हो गयी है ।

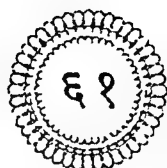
परन्तु

मन्दिर व उपाश्रय मे भी उनकी जीभ सतत कटु शब्द ही निकाला करती है ।

सिर्फ उनके शब्द ही कटु नहीं,
उनका स्वभाव भी इतना ही खराब है,
उनका वर्तन भी इतना ही खराब है ।
घर मे वे कप-प्लेट तोडते है,
तो मन्दिर मे कटोरियॉ फेकते है,
बाजार मे गालियॉ बोलते है
तो घर मे वे क्या बोलते है, यह तो वे स्वय भी नहीं जानते ।
ऐसे पिता का पुत्र मेरे पास आया था ।
मैने उससे कहा-
'तेरे पप्पा को तू प्रेम से नहीं समझा सकता ?'
'वे किसी भी हालत मे समझनेवाले नहीं ।'
'मदबुद्धि है ?'
'नहीं ।'
'तो ?'

'महाराजसाहेब ! उनका स्वभाव ही ऐसा है । उनका ऐसा स्वभाव बनने के पीछे भी कारण है । हमारी बाल्यावस्था के वक्त हमारे घर की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी । गालियॉ खाकर, लाचारी से विवश होकर, अन्याय सहन करके

पप्पा ने उन दिनो मे हमे सभाला है,
और सारे घर को टिकाये रखा है ।
एकदम समझ मे आ जाय ऐसी बात है कि **सुख के समय मे इन्सान अपने बिगड़े हुए स्वभाव को भी अच्छा रखना चाहे, तो रख सकता है,**
परन्तु दुःख के समय में तो अच्छा-भला इन्सान भी अपना अच्छा स्वभाव भी बिगाड़ बैठता है ।
हो सकता है कि पप्पा का स्वभाव बिगाडने मे
इस दुःखद परिस्थिति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी हो ।
मानता हूँ कि, आज परिस्थिति इस हद तक बुरी नहीं ।
हालॉकि, अपने आगन मे वालकेश्वर के सुख नहीं आये है,
परन्तु धारावी की झोपड-पट्टी के दु:ख भी नहीं आये, यह भी इतना ही सच है,
फिर भी पप्पा का स्वभाव बिगड़ा हुआ ही है ।
और इसकी मुझे या मेरे परिवार को कोई तकलीफ नहीं ।
क्योंकि
हमने हमारी सारी जीवनव्यवस्था पप्पा के स्वभाव को
ध्यान मे रखकर उसीके अनुरूप बना ली है ।
वैसे, इस उम्र मे हम उन्हे उनका स्वभाव वदलने का कहे,
यह कहाँ तक उचित है ?
और वे स्वय शायद अपना स्वभाव वदलने के लिये
तैयार भी हो जाये,
फिर भी उसमे सफलता कितनी मिलेगी ?
महाराजसाहेव ! वैसे उम्र तो हमारी भी होने ही वाली है न ?
यदि हम मम्मी-पप्पा को नहीं संभालेंगे, तो हमारे बेटे
हमे कैसे संभालेंगे ?
दर्शन, उस पुत्र के मुँह से सुनी हुई इन बातों ने मेरी आँखों में भी
हर्ष के अश्रू ला दिये । तुझसे इतना ही कहूँगा कि
उस भूतकाल का पुनरावर्तन कराना तेरे हाथ में है ।



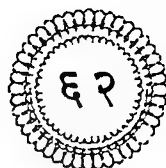
महाराजसाहेब,
पप्पा के गलत स्वभाव के सामने पुत्र के सुन्दर बर्ताव को प्रस्तुत करता हुआ सुन्दर प्रसग पढते हुए आपकी तरह मेरी ऑखे भी भर आयीं ।
आपसे एक विनती है कि यदि अनुकूलता हो और आपको कोई हर्ज न हो, तो उस परिवार का पता मुझे भेजियेगा ।
उस विनयी पुत्र के दर्शन करके मै स्वय को धन्य बनाना चाहता हूँ ।
सचमुच, छोटे-से घर मे दस व्यक्तियो को बसाना आसान है,
परन्तु इस छोटे से मन मे
सिर्फ परिवार के सदस्यो को भी प्रसन्नतापूर्वक बसाना अति मुश्किल है ।
आपके द्वारा लिखी गयी घटना से मै ऐसा समझा हूँ कि
मम्मी-पप्पा के चाहे जैसे विचित्र स्वभाव को भी
मुझे व मेरी पत्नी को
जो भी समाधान करना पडता हो, वह करके भी
निभा ही लेना चाहिये,
स्वीकार ही लेना चाहिये,
अपना ही लेना चाहिये ।
फिर भी चाहता हूँ कि आप किसी और नये अभिगम से इसके बारे मे समझाईये ।
मन मे बैठा हुआ अह सीधे-सीधे रवाना हो जाय, ऐसा नहीं लगता ।
दर्शन,
एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान मे रखना कि
जिसका भूतकाल लंबा होता है और भविष्यकाल छोटा होता है,
उस व्यक्ति के लिये अपना स्वभाव बदलना जितना मुश्किल होता है,
उसकी तुलना मे
जिस व्यक्ति का भूतकाल छोटा होता है और भविष्यकाल लंबा होता है,
उस व्यक्ति के लिये

अपना स्वभाव बदलना भी आसान होता है और सामनेवाले व्यक्ति के स्वभाव को निभा लेना भी आसान होता है ।

मै इस सदर्भ मे तुझसे ही पूछता हूॅ कि
तुझे क्या लगता है ?
स्वभाव बदलने मे मम्मी को सफलता मिलनी असदिग्ध है या
मम्मी का स्वभाव निभा लेने मे
पत्नी को सफलता मिलनी असदिग्ध है ?
तुझे पता है ?
रेल्वे सफर मे अडतालीस घटो का सफर करनेवाला यात्रिक
दो घटो का सफर करनेवाले यात्रिक को
सुविधा भी देता है
और उसकी ओर से होनेवाली असुविधा को
निभा भी लेता है । तो फिर
मम्मी के गलत स्वभाव के मामले मे
तेरी पत्नी यह अभिगम क्यो नहीं अपना लेती ?
तू उसे यह अभिगम अपनाने के लिये क्यो
दबाव नहीं करता ?

दर्शन,

याद रखना,
हमारे साथ चलनेवाले की गति धीमी हो और
हमारी गति तेज हो,
परन्तु हमारे साथ चलनेवाले को
हम साथ ही रखना चाहते हो,
तो हमे ही गति धीमी करनी पडती है ।
वस, इसी तरह हमारे परिवार के किसी सदस्य का स्वभाव
वुरा हो और हमारा स्वभाव अच्छा हो, परन्तु हम
परिवार के उस सदस्य को साथ ही रखना चाहते हो, तो
हमे ही अपना अह तोडना पडता है, हमे ही अपने स्वभाव को
उदार वनाना पडता है ।

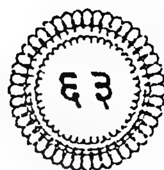


महाराजसाहेब,

आपने तो कितना बढिया समाधान दिया है ।
आपके पत्र का तात्पर्यार्थ स्पष्ट है कि
मम्मी-पप्पा के स्वभाव की ओर देखने की जरूरत ही नहीं ।
वे चाहे जैसे भी हो,
हमे उन्हे निभा ही लेना है,
सभाल ही लेना है,
परन्तु, मन मे एक प्रश्न यह उठता है कि
सयुक्त कुटुब मे रहनेवाले प्रत्येक को अपना फर्ज बजाना ही
पडता है, तो मम्मी-पप्पा को यह कायदा लागु नहीं पडता ?
आप तो ससार का त्याग करके बैठे है, इसलिये
आप शायद हमारे वर्तमान को अच्छी तरह से न भी
जानते हो,
परन्तु आज परिस्थिति ऐसी है कि
राष्ट्र मे या राज्य मे,
शहर मे या गॉव मे,
समाज मे या कुटुब मे,
जो भी व्यक्ति अपने स्वभाव को उदार रखकर
आसपासवाले के गलत स्वभाव को निभा लेता है,
उस व्यक्ति को ज़िंदगी भर सबकी ओर से
तकलीफ ही सहनी पड़ती है,
उस व्यक्ति को ज़िंदगीभर सबकी ओर से पीड़ा ही मिलती है ।
मैने ऐसे पिताओ को देखा है,
जिन्होने पुत्रो के शर्मिले स्वभाव के बदले
सतत उन्हे तकलीफ ही दी है ।
मैने ऐसी सासुओ को देखा है,
जिन्होने बहूओ के सौजन्यसभर व्यवहार के बदले
सतत उन पर अत्याचार ही किये है ।
यदि वर्तमान की यही दशा हो तो हम जैसे

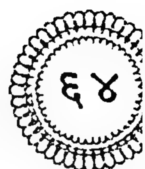
करे क्या ?
विद्रोह करके मम्मी-पप्पा के सामने आवाज उठाये या
मूक रहकर उनकी ओर से होनेवाले
अत्याचारो को सहन करते ही चले जाये ?
एक बार किसी भी तरह मम्मी-पप्पा को
उनका स्थान बता दे या फिर
कमज़ोर रहकर उनकी ओर से होनेवाले
सारे अन्यायो को सहन करते ही चले जाये ?
'सबका सब कुछ सहन करते ही जाना',
यह बात आदर्श के तौर पर ठीक है,
परन्तु वास्तविकता मे इस पर अमल करना सभव नहीं ।
लुहार के वहाँ रहनेवाली एरण चाहे जितनी मजबूत क्यो न हो,
एक वक्त तो उसके लिए ऐसा आता ही है कि
जब हथोडे के प्रहार झेलने की उसकी क्षमता पूरी हो जाती है
और
वह टूट जाती है ।
गाँव के छोर पर खडा पर्वत चाहे जितना मजबूत क्यो न हो,
उसके लिए एक वक्त तो ऐसा जरूर आता है कि
जब भूकप के धक्के बार-बार झेलने की
उसकी ताकत खत्म हो जाती है ।
और वह ढह जाता है ।
महाराजसाहेब । आपने पढी है किसी शायर की ये पक्तियाँ ?
'दुनिया ज़रूर पूजती हमे झुक-झुककर;
मगर अफसोस है कि हमे बुरा बनना आया ही नहीं ।'
इन पक्तियो का तात्पर्यार्थ स्पष्ट है ।
यदि बुरे स्वभाववालो के बीच टिके रहना है,
तो आप भी खराब बन जाईये,
नहीं तो दुनिया मे से फेंक दिए जाओगे ।
कहिये, इस बारे मे क्या जवाब है आपका ?

दर्शन,



तेरा पत्र पढा ।
उसमे तेरे द्वारा व्यक्त किये गये आक्रोश को भी जाना ।
इस विषय मे मै तुझसे इतना ही कहूँगा कि
मानवता,
सवेदनशीलता,
सहृदयता,
सौजन्य के
हिसाबो का योग चाहे थोडे विलब से मिलता है,
परन्तु
इसमे जो जमा किया गया हो, वह निष्फल नहीं जाता,
यह निश्चित समझ रखना ।
'जैसे के साथ तैसे होने की बात यदि
सारे जग ने अपना ली होती, तो
इस जगत को
परमात्मा न मिले होते,
संत न मिले होते,
सज्जन न मिले होते,
सद्गृहस्थ न मिले होते ।
मिले होते सिर्फ गुंडे, लुच्चे, लफंगे व बदमाश ।
यह दुनिया आज थोडी-बहुत भी अच्छी लग रही है,
रहने योग्य लग रही है,
इसका श्रेय 'जैसे के साथ तैसे होने' की बात से
जो सहमत नहीं हुए, उनको जाता है ।
तूने मेरे समक्ष किसी शायर की पक्तियाँ रखी, तो मै भी तेरे समक्ष
एक शायर की पंक्तियाँ रखता हूँ । ध्यान से पढना ।
'अधर पर मुस्कान लाकर, जिदगी को तू हँस लेना,
शोणित जो बहाये हृदय, प्रेम से तू पी लेना ।
जिगर के जख्म दु ख दे, तो स्नेह से सह लेना,

और रोना हो तो मेरे भैया । बसुरी जैसे मधुर रो लेना ।'
दर्शन,
मै तुझसे इतना ही पूछता हूँ कि
पिछले पत्र मे तेरे द्वारा लिखी गयी किसी शायर की
पक्तियो के जवाब मे,
इस पत्र मे मैने तुझे जो एक शायर की पक्तियाँ लिखी,
वे पक्तियाँ तुझे ज्यादा जँची या नहीं, यह मुझे जरूर लिखना ।
तूने जो पंक्तियाँ लिखी, उन पर अमल करने पर
हिटलर,
चगेजखान,
नादिरशाह
औरगजेब,
इदी अमीन जैसे क्रूर इन्सानो की भेट दुनिया को मिलने की
संभावना है,
जबकि
मेरे द्वारा लिखी गयी पक्तियो पर अमल करने से
परमात्मा महावीरदेव,
कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य,
नरसिह मेहता, मीरावाई,
कुमारपाल, वस्तुपाल, तेजपाल, जगडूशा,
भामाशा जैसे
उत्तम पुरुषो की भेट दुनिया को मिलने की
संभावना है । क्या तू ऐसा तो नही चाहता है न कि
इस दुनिया में बोलबाला तो हिटलरो का ही रहनी चाहिये ?
गौरव तो चंगेज़खानों के ही बढ़ने चाहिये ?
पूजा तो नादिरशाहों की ही होनी चाहिये ?
सत्कार-सन्मान तो औरंगजेबो के ही होने चाहिये ?
यदि नहीं, तो मेरा संदेश स्पष्ट है । बुरे स्वभाव के सामने भी
अच्छा ही स्वभाव ! इसमें कोई छूट-छाट नहीं ।

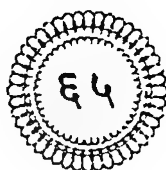


महाराजसाहेब,

आप पर मेरे द्वारा लिखे गये आखरी पत्र मे
मैने जो दलीले पेश की थी,
उनसे मुझे ऐसा लगता था कि
'जैसे के साथ तैसे' होने की बात मे
आपको सम्मति देनी ही पडेगी,
परन्तु
उस पत्र की दलीलो का आपने जो जवाब दिया है,
वह पढकर मै तो ठडा पड गया हूँ ।
आपके जवाब को स्वीकार लेने के सिवाय
मेरे पास और कोई
चारा ही नहीं ।
आपकी बात एकदम सही है कि
सदगृहस्थ, सज्जन, सत व परमात्मा की इस दुनिया को
मिली हुई व मिलनेवाली भेट का श्रेय
'जैसे के साथ तैसे' की वृत्ति को तो नहीं जाता ।
वास्तविकता यह होने पर भी मन इस अभिगम पर अमल
करने के लिये जल्दी तैयार नहीं होता, इसके पीछे क्या कारण होगा ?
इसमे भी करुणता तो यह है कि
सज्जन के सामने मन सज्जन बनने के लिए तैयार नहीं,
प्रेम के सामने मन प्रेम देने के लिए तैयार नही,
उदार के सामने मन उदार होने के लिए तैयार नहीं,
सरल के सामने मन सरल बनने के लिए तैयार नहीं ।
वह तो
दुर्जन के सामने दुर्जन बनने के लिए ही तैयार है,
क्रोधी के सामने वैरी बनने के लिए ही तैयार है,
गुडे के सामने खूनी वनने के लिए ही तैयार है,
बदमाश के सामने बदमाशी दिखाने के लिए ही तैयार है,
कपटी के सामने कपटी वनने के लिए ही तैयार है ।

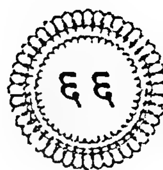
सक्षेप मे,
मन दुहरी चाल चल रहा है ।
सद्व्यवहार के सामने वह सद्व्यवहार करने के लिए तैयार नहीं,
परन्तु
दुर्व्यवहार के सामने दुर्व्यवहार करने के लिए तो मानो वह राह
देखकर ही बैठा है ।
आज मुझे ख्याल आ रहा है कि
पप्पा ने हर बार मेरे साथ कठोर व्यवहार ही
किया है, ऐसा नहीं है ।
मम्मी ने सतत मेरी पत्नी की भूले ही निकाली है,
ऐसा नहीं है ।
पप्पा के सद्व्यवहार का अनुभव मैने कई बार किया है,
तो मम्मी के प्रेम भरे व्यवहार का अनुभव
मेरी पत्नी को भी कई बार हुआ ही है ।
फिर भी
मन इस सद्व्यवहार या प्रेम-भरे व्यवहार को देखने के लिए
तैयार नहीं और
कठोर व्यवहार या कर्कश व्यवहार को भूलने के लिए तैयार नहीं ।
महाराजसाहेब !
इस वास्तविकता पर विचार करने पर तो ऐसा लग रहा है कि
मम्मी-पप्पा द्वारा मेरी समझदारी की अवस्था मे
हुए उपकार भी यदि मै सकट के समय मे भूल रहा हूँ,
तो मेरी नासमझी की अवस्था मे
उनके द्वारा मुझ पर जो उपकार हुए,
उनका ख्याल तो मुझे जिदगी भर कहाँ से आयेगा ?
और यदि उन उपकारो का ख्याल ही नहीं आये, तो
उन उपकारो का बदला चुकाना तो मेरे लिए
सभव ही कैसे होगा ?
यह विचार करते हुए खूब परेशान हूँ ।

दर्शन,



कुछ समय पहले बबई के एक धनाढ्य विस्तार मे घटी
एक घटना तू पढ ले पढकर तू स्तब्ध रह जाएगा ।
रात को करीब नौ बजे सोफा पर बैठकर
अखबार पढते हुए पप्पा को उसके डॉक्टर पुत्र ने कह दिया
'पप्पा, एक बात सुन लीजिये ।'
'क्या ?'
'आज से ठीक तीसरे दिन सुबह मे नौ बजने से पहले
आपको यह घर छोड देना है ।'
भूकप हो और जिस प्रकार इमारत कॉप उठती है, उसी प्रकार
पुत्र की बात सुनते हुए उसके पप्पा कॉप उठे ।
'परन्तु बेटे ! इसका कारण बताओगे ?'
'कोई कारण नहीं । मुझे जो कहना था, आपसे
कह दिया है । आपको यह घर छोड देना है ।'
'परन्तु मै जाऊँ कहॉ ?'
'यह तो तुम्हे सोचना है ।'
'तेरी मम्मी गुजर गयी है । मेरी पुख्त वय हो गयी है ।
इस स्थिति मे घर छोडकर और जाऊँ कहॉ ? और करूँ भी क्या ?
'मैने आपसे कह दिया न कि अब आपको इस घर मे नहीं रहना है ।
बस बात यहीं खत्म हो जाती है ।'
शायद ७०-७५ वर्षकी उम्र मे पहुँचा हुआ वह बाप
सारी रात बिस्तर मे तडपता रहा ।
उसकी ऑख मे से पडी हुई ऑसूओ की गगा ने उनका तकिया
गीला कर दिया ।
दूसरे दिन सुबह वे घर से बाहर निकले
और पहुँचे अपने एक पुराने मित्र के पास ।
व्यथित हृदय से व रोती ऑख से उन्होंने मित्र को
पुत्र का हुक्म सुनाया ।
'क्या सचमुच पुत्र ने ऐसा कहा ?'

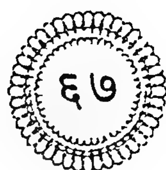
'हॉ ।'
'कारण ?'
'मै नहीं जानता ।'
'चिन्ता मत करो । अभी यहाँ आये ही हो, तो भोजन कर लो ।
हम दोनो साथ मे ही जायेगे ।'
'परन्तु कहाँ ?'
'तुम्हारे घर ।'
'क्या करोगे ?'
'जो हो, वह देखते रहना ।'
करीब चार घटे बाद पिता व उसका मित्र, दोनो घर पहुँचे ।
रविवार होने से पुत्र घर मे ही था ।
पिता की मौजूदगी मे ही मित्र ने पुत्र को बुलाया ।
'तेरे पप्पा को घर छोडकर जाने का ऑर्डर तूने किया है ?'
'हॉ ।'
'कारण ?'
'हम पिता-पुत्र के व्यवहार मे आपको दखलबाजी करने की कोई आवश्यकता नहीं ।'
और पुत्र का यह जवाब सुनते ही पिता के
मित्र ने अपनी ब्रीफकेस खोली ।
उसमे से एक कागज निकाला और पुत्र के हाथ मे थमाते हुए कहा, 'ले प...
और जैसे ही पुत्र ने वह कागज पढा, स्तब्ध रह गया ।
'क्या यह सच है ?'
'हॉ', मित्र इतना ही बोले और पल भर का भी विलब किये बिना
पुत्र पिता के पास जाकर रोने लगा । 'पप्पा,
मुझे माफ कर दीजिये ।
मेरी पत्नी की बातो मे आकर मैंने आपको घर छोडकर जाने का
ऑर्डर किया । मुझ जैसे नालायक को जो सजा देनी हो, वह सजा
दीजिये । परन्तु पप्पा...!'
दर्शन, उस कागज की पर्ची पर क्या लिखा हुआ था, इसकी बात आ...



दर्शन,

वह कागज था अस्पताल के सर्टिफिकेट का ।
उसमे बताया गया था कि 'पिताजी ने स्वय की इच्छा से
अपनी किडनी निकालने की सम्मति दी है ।'
पुत्र को पहली बार पता चला कि पप्पा सिर्फ एक ही
किडनी पर जीवन बिता रहे है ।
परन्तु ऐसा किया क्यो ?
किडनी निकालने की सम्मति क्यो देनी पडी होगी ?
पल भर का भी विलब किये बिना उसने पप्पा से पूछा ।
पप्पा इस प्रश्न जवाब दे सकने की स्थिति मे नहीं थे ।
पप्पा के मित्र ने ही जवाब दिया,
'उन दिनो तेरे पप्पा की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और
तुझे पढाने के लिये पैसो की जरूरत थी ।
वैसे तो तुझे कॉलेज मे से उठाने का सोच रहे थे,
परन्तु आगे पढने का तेरा आग्रह जोरदार था ।
और इसमे भी तुझे मेडिकल लाइन मे ही जाना था ।
खूब विचार करके तेरे भविष्य को उज्जवल बनाने के लिए तेरे पप्पा ने
किडनी निकलवाकर जो पैसा मिले, उनसे तुझे
पढाना निश्चित किया ।
इसमे आगे बढने से पहले उन्होने मेरी सलाह ली
और मै तो सुनकर स्तब्ध रह गया ।
'पुत्र को आगे पढाने के लिये
स्वय के जीवन के साथ ऐसा खिलवाड ?'
परन्तु तेरे पप्पा मजबूत थे ।
दु खी मन से मैने उन्हे हॉ कही और प्रसन्न चित्त से
अस्पताल मे दाखिल होकर तेरे पप्पा ने अपनी एक
किडनी निकलवा दी ।
किडनी बेचकर जो पैसे मिले,
वे तेरी पढाई मे लगा दिये ।

आज तू डॉक्टर बन पाया है इसके पीछे
तेरे पप्पा का यह बलिदान है, यह कुर्बानी है ।
ऐसे स्नेहशील पिता को उनकी अधेड वय मे
सिर्फ पत्नी की बातो मे आकर घर से बाहर निकलने का
ऑर्डर करते हुए तुझे शर्म न आयी ?'
पप्पा के मित्र के मुख से भूतकाल मे पप्पा के बलिदान की
यह घटना सुनकर पुत्र रोने लगा ।
'पप्पा ! कुलदीपक बनने के बदले मै कुलागार बना ।
दीपक तो प्रकाश देकर औरो को ठडक देता है, राहत देता है,
परन्तु अगारा तो ज्वाला पैदा करके सामनेवाले को जलाता है ।
मै अगारा बना हूँ ।
आपको इस उम्र मे ठडक पहुँचाने के बदले जलानेवाला बना हूँ ।
मुझे जो सजा देनी हो, दीजिये ।
आजसे आपके दिल को ठेस पहुँचे ऐसा एक भी शब्द
मेरे मुख से नहीं निकलेगा ।
मेरी पत्नी से कह दूँगा कि इस घर मे पप्पा तो रहेंगे, रहेंगे,
रहेंगे ।
उसे रहना हो, तो रहे नहीं तो रवाना हो उसके मायके ।'
दर्शन,
किस पुत्र के आगे पिता ने अपने ऐसे बलिदान की बात की है ?
कौन-सा पुत्र अपने पिता के पास बैठकर शान्त चित्त से
उन्होंने जो बलिदान दिया,
उसकी बात सुनने के लिये
तैयार हुआ है ?
मै दूसरे की बात नहीं करता, तुझसे ही कहता हूँ ।
मन हो जाय, तो एक बार मम्मी-पप्पा को तेरे भूतकाल के
पृष्ठ खोलने के लिए मजबूर करके देखना । तुझे जो सुनने मिलेगा,
वह मम्मी-पप्पा के लिये तेरे मन मे भरे हुए तमाम कचरे को
रवाना किए बिना नहीं रहेगा ।

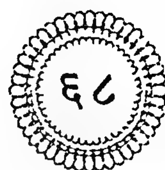


महाराजसाहेब !

पिछले दो पत्रो मे आपके द्वारा लिखे गये दृष्टान्त पढकर
सचमुच मेरे अन्दर हलचल मच गयी है ।
आप माने या न माने, परन्तु मेरे मन मे एक तरह का डर
घुस गया है कि मम्मी-पप्पा के पास मेरे भूतकाल को
खोलने मे मै सफल हो भी जाऊँ,
और उसमे भी ऐसी ही कोई कथा छुपी पडी हो तो ?
मेरी तो हालत ही बिगड जाएगी,
मेरा सुख-चैन छीन जाएगा,
मेरी प्रसन्नता व मस्ती गायब हो जाएगी ।
क्योकि
जवानी के जोर मे, बुद्धि के नशे में और
अहं की मददोशी मे मैंने मम्मी-पप्पा को कितना परेशान किया है,
दुःखी किया है और सताया है, यह तो सिर्फ मै अकेला ही जानता हूँ ।
कभी-कभी तो मैने मम्मी-पप्पा की मौत की भी कामना की है, तो
जीवन की कुछ कमजोर पलो मे
मम्मी-पप्पा का खून करने का विचार भी मेरे मन मे आ गया है ।
ऐसा कृतघ्न, नीच व नालायक मै
मम्मी-पप्पा के द्वारा मुझ पर किये गये अनगिनत उपकारो को
जानने के बाद भी स्वस्थ रह सकूँ
या मस्त रह सकूँ, ऐसी कोई सभावना नहीं ।
आपने चाहे मुझे चुनौती दी हो, परन्तु
आपकी यह चुनौती मुझे स्वीकारनी नहीं है ।
मेरे भूतकाल की कोई कथा मम्मी-पप्पा के पास मुझे जाननी नहीं है ।
मै तो यह कथा जाने बिना भी मम्मी-पप्पा को अब
समर्पित हो गया हूँ ।
'उनकी प्रसन्नता ही मेरी प्रसन्नता' को मै मेरे जीवन का
मुद्रालेख बना बैठा हूँ ।
मन के खरल मे

क्रोध व वैर को घूटते रहकर
आज तक मेरे जीवन को मैने जो नुकसान पहुँचाया है,
उस नुकसान का शिकार अबसे कभी न बनने का
दृढ निश्चय मै कर चुका हूँ ।
मुझे स्पष्ट ख्याल आ गया है कि
जिसको बात-बात मे कम ही लगा करता है,
उसके साथ प्रसन्नता की शादी संभव नहीं ।
और इसी कारण से
मम्मी-पप्पा की ओर से मेरी कोई भी अपेक्षा
पूर्ण नहीं हो, तो भी,
मेरी अपेक्षा की सर्वथा उपेक्षा होगी, तो भी,
मेरी अवगणना होगी, तो भी,
मेरे अहं को चोट पहुँचेगी, तो भी,
मेरी सुख-सुविधाओ मे कटौती होगी, तो भी
मन मे इसका कोई लेखा-जोखा न रखने का
दृढ सकल्प मै कर चुका हूँ ।
आपसे एक ही विनती करता हूँ कि मेरे इस दृढ निश्चय मे
और दृढ सकल्प मे मुझे हमेशा के लिए टिके रहने का मन
हो, ऐसे आशीर्वाद दीजियेगा ।
और हॉ,
मेरी पत्नी वैसे तो सुशील है,
कुलीन है, समझदार है,
गुणवती है, कृतज्ञ है, फिर भी
उसका अन्त करण भी मम्मी-पप्पा के प्रति सद्भाव मे
हरा-भरा बना रहे, इसके लिए छोटी-सी हितशिक्षा
उसके लिए भी भेजियेगा ।
आखिर तो वह भी एक स्त्री है, मेरे पुत्र की मम्मी है ।
एक मम्मी दूसरी मम्मी के दिल को समझ जाय, तो
मेरे घर मे नन्दनवन का सर्जन हुआ ही समझो ।

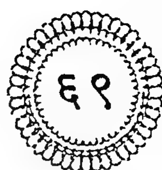
दर्शन,



तेरा पत्र पढकर मेरा हृदय भर आया ।
पत्रव्यवहार की शुरूआत मे तेरी मन स्थिति
और
पत्रव्यवहार की समाप्ति के वक्त तेरी मन स्थिति मे जमीन-आसमान का अन्तर है । कृतघ्नभाव का स्थान कृतज्ञभाव ने ले लिया हो, ऐसा मुझे स्पष्ट लगता है ।
बुद्धि का स्थान हृदय ने और
तर्क का स्थान स्नेह को देने मे तू बहुत हद तक सफल बना है,
ऐसा स्पष्ट रूप से महसूस होता है ।
तुझे मेरे अन्तर के आशीर्वाद है कि
तेरी अभी की भावुकता हमेशा के लिए टिकी रहे ।
तेरा वर्तमान का विचार परिवर्तन और हृदय परिवर्तन
सही अर्थ मे जीवन परिवर्तन करनेवाला बना रहे
और हॉ,
तेरी पत्नी के लिये तूने हितशिक्षा मॅगवायी है, तो
इसके बारे मे उसे क्या लिखूॅ ?
सिर्फ इतना ही कहूॅगा उसे कि
वह सतत अपनी ऑखो के सामने मायके मे रही हुई अपनी
मम्मी को रखे
और स्वय भी भविष्य मे सासु बननेवाली है, यह ध्यान मे रखे ।
ये दो बाते यदि वह स्मृतिपथ पर रखती रहेगी, तो
मम्मी-पप्पा के प्रति अहोभाव टिकाये रखने मे उसे खास
दिक्कत नहीं होगी ।
क्या बताऊॅ तुझे ?
मेरी ओर से उसे कहना कि
किसीके भी प्रति हम कडवे बने रहते है,
तो धीरे-धीरे वह कडवाहट की लाश स्वयं ही
उठाने की नौबत आती है । कुदरत के इस सनातन

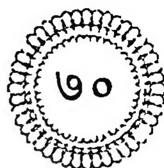
सत्य को वह प्रतिपल नजर के समक्ष रखे ।
अल्प भूतकाल रखनेवाला बालक
प्रेम का अधिकारी है, तो
अल्प भविष्य रखनेवाले मम्मी-पप्पा भी
प्रेम के ही अधिकारी बने रहने चाहिये ।
तिरस्कार-पात्र तो कभी नहीं बनने चाहिये ।
इस गणित को वह
अस्थिमज्जा की तरह स्वय मे ओतप्रोत कर दे
और
अन्तिम बात
प्रेम एक ऐसा तांता है,
जिसे हम अपनी ओर ही
खींचा करते हैं, तो वह टूट जाता है और
सामनेवाले की तरफ रखते हैं, तो
वह और अधिक मजबूत बनता जाता है ।
यह बात तुम दोनो को नज़र के समक्ष रखनी है ।
मैने और तूने, हम सबने
विराट अनन्त काल के ससार-परिभ्रमण मे यही भूल की है ।
सबको मुझे ही प्रेम देना चाहिये,
मेरे प्रति सबको प्रेम दर्शाना चाहिये,
मेरी कद्र सबको करनी चाहिये ।
इस गणित के आधार पर हम जीवन जीते चले आये है
और इसी कारण से हम सबके तिरस्कार-पात्र बने है,
परन्तु
अब इस गणित को उल्टा कर दे ।
मुझे सबको प्रेम देना है, स्नेह देना है,
इस गणित को जीवन मे सही अर्थो मे अमल मे लाने लगे ।
जिस चमत्कार का सर्जन होगा,
वह हमारी कल्पना से बाहर का होगा ।

महाराजसाहेब,



आपका आभार मानने के लिए मुझे शब्द नहीं मिलते ।
गदगी के ढेर की तरफ दौडते हुए कदमो को
आपने सम्यक् मार्गदर्शन देने द्वारा
उद्यान की दिशा की ओर मोड दिया है ।
धधकते हुए ज्वालामुखी के साथ प्यार जमाने के लिये
तैयार हो चुके हृदय को
आपने सम्यक् समझ देने द्वारा
हिमालय के साथ प्यार करनेवाला बना दिया है,
कृतघ्नता के पाप से राक्षसवश का प्रतिनिधित्व
करनेवाले मन को
आपने सुन्दर हितशिक्षा देने द्वारा
कृतज्ञता का प्रतिनिधित्व करनेवाले दैवी वश का
बना दिया है,
सघर्षो के द्वारा जगल जैसे बने हुए घर को
आपने प्रेरणा का पीयूष-पान कराने द्वारा
नन्दनवनतुल्य बना दिया है ।
आज घर मे सिर्फ शान्ति ही नहीं,
आनन्द भी है ।
स्वस्थता ही नहीं,
प्रसन्नता भी है ।
उद्विग्नता का अभाव ही नहीं,
मस्ती की अनुभूति भी है ।
हक की बाते अब घर मे सुनायी नहीं देती ।
सब अपने-अपने कर्तव्यपालन मे मस्त है ।
अब आक्रोश भरे शब्द घर मे सुनायी नहीं देते ।
खिलखिलाते हुए हास्य की आवाज बार-बार सुनायी देती है ।
पप्पा के पास जाकर मैने जब सब हक 'छोड देने' की
बात रखी, तब पप्पा ने आश्चर्य के साथ मुझे कह दिया-

'अब से इस घर की व्यवस्था तुझे ही सभालनी है ।'
मम्मी के पास जाकर मेरी पत्नी ने
'आप कहेगे उसी तरह इस घर मे अवसे मै
रहूँगी', ऐसा कहा,
तब अपनी कमर मे खोसा हुआ चाबियो का गुच्छा
निकालकर मेरी पत्नी के
हाथ मे देते हुए मम्मी इतना ही वोली कि
'बेटी । दो पैसे धर्म-कार्य मे खर्च करने की मुझे जब इच्छा होगी,
तब दोगी न ?'
मै कल्पना भी नहीं कर सकता कि
अभी हम सब घर मे रहते है या स्वर्ग मे ?
आज ख्याल आता है कि
घर को फर्निचर की सजावट से भव्य बनाने का काम
तो पैसे कर देते हैं,
परन्तु
घर को प्रसन्नता से हरा-भरा बनाने का काम तो
प्रेम के बिना संभव ही नहीं ।
फिलहाल आनन्द तो इस बात का होता है कि
अच्छा हुआ,
मम्मी-पप्पा की मौजूदगी मे ही हमारी
खोपडी ठिकाने आ गयी,
तो साथ ही साथ इस वात का दु.ख भी होता है कि
काश, समझदारी की वय मे ही
ये सब बाते समझ मे आ गयी होती ।
खैर, प्रेम के, सहनशीलता के, महृदयता के
ऐसे सुन्दर अनुभव के बाद एक शायर की लिखी पंक्तियाँ
याद आ रही है ·
'सकीर्ण वर्तुल करे, उसका जीवन मरता रहता है,
जो वसत विखरता, उसे नया मिलता रहता है ।



दर्शन,

तेरा पत्र पढा । पत्रव्यवहार के माध्यम से हृदयपरिवर्तन व
विचार-परिवर्तन तक पहुँचे हुए तुझे अब
जीवन-परिवर्तन के लिए सत्त्व प्रकट करना है,
यह खास ध्यान मे रखना ।
बाकी, **गुणस्मरण के लिए मन को तैयार करना फिर भी आसान है,**
परन्तु ऋणस्मरण के लिए मन को तैयार करने का काम
सचमुच कठिन है ।
तू तेरे मन को इसके लिये तैयार कर पाया है, इसके लिये
तुझे भी खूब-खूब धन्यवाद ।
और तेरे इस सम्यक् अभिगम मे तुझे सहयोग
देने के लिए तैयार हो चुकी तेरी पत्नी भी
खूब-खूब धन्यवाद की पात्र है ।
पत्रव्यवहार की समाप्ति के अवसर पर एक बात की तुझे
खास याद दिलाना चाहता हूँ । ससार के क्षेत्र मे
माँ-बाप के उपकारो की तुलना मे किसीका उपकार नहीं आता,
यह बात सच है,
परन्तु
गुमराह जीवन को सन्मार्ग पर ला देनेवाले गुरुदेव का उपकार
माँ-बाप से भी अधिक और
उससे भी अधिक जगत के जीवमात्र पर अनन्त करुणा
बरसानेवाले परमात्मा का उपकार तो
शब्दो का विषय नहीं बन सकता ।
यह वास्तविकता तू तेरे जीवन की प्रत्येक पल मे स्मृतिपथ मे रखना ।
क्योंकि इस जीव को राग की भाषा जितनी समझ मे आती है,
उतनी प्रेम की भाषा समझ मे नहीं आती ।
और प्रेम की भाषा जितनी समझमे आती है
उतनी करुणा की भाषा समझ मे नहीं आती ।
माँ-बाप की भाषा मे राग केन्द्रस्थान पर होता है,

गुरुदेव की भाषा में प्रेम केन्द्रस्थान पर होता है, तो
परमात्मा की भाषा में करुणा केन्द्रस्थान पर होती है ।
इन तीनों भाषाओं की लिपि समझने में तू कभी
धोखा मत खाना और
तीनों भाषाओं में किस भाषा को कितना प्राधान्य दिया जाय,
इसका विवेक रखने में तू बिलकुल भूल मत करना ।
सिर्फ दु:ख की चिन्ता करनेवाले माँ-बाप दोष की चिन्ता भी
करने लगे, इसके लिए तू सतत प्रयत्नशील बनना ।
मौत तक के ही सुख की चिन्ता करके रुक जानेवाले माँ-बाप
मौत के बाद के सुख की भी चिन्ता करने लग जायें, इस विषय में
तू उन्हें सतत सावधान करते रहना ।
तू स्वयं तेरे जीवन को सिर्फ दु:खमुक्ति के लक्ष्यवाला
न बनाकर दोषमुक्ति के लक्ष्यवाला बनाना ।
तेरे हृदय का प्रेम सिर्फ माँ-बाप, पत्नी या पुत्र तक
सीमित न रहकर जगत के जीव मात्र तक फैलता रहे,
इसके लिए खास सावधान रहना ।
और कृतज्ञता, उदारता आदि गुणों के सहारे तू तेरी आत्मा को
जल्दी से जल्दी सर्वकर्ममुक्त बनाने में सफलता
पाना । मेरे अन्तर के आशीर्वाद तेरे साथ है ।
महाराजसाहेब,
अभी हृदय स्तब्ध है, आँखें स्थिर हैं,
दिल अहोभाव से व्याप्त है ।
विदाई की इन घड़ियों में आपसे इतना ही कहूँगा कि
जिंदगी में आपको कभी 'दर्शन कृतघ्नता का शिकार बनकर
नमकहराम बन गया है'
ऐसे शब्द सुनने नहीं मिलेंगे ।
एक वक्त के कृतघ्न दर्शन की,
आज कृतज्ञ बने हुए दर्शन की ओर से
आपको यह पक्की गॅरण्टी है ।

सैकडों हाथों व हजारों ऑखों तक पहुँचनेवाले इस साहित्य को हमें हज़ारों हाथों व लाखों ऑखों तक पहुँचाना है, आवश्यकता है आपके औदार्य भरे सहयोग की !

पू. आ. भ. श्रीमद् विजय रत्नसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज के वरद हस्तों से लिखे गये साहित्य को लोकमानस की ओर से जो प्रचड प्रतिसाद मिल रहा है, उससे हमें गौरव की अनुभूति हो रही है ।

इस साहित्य को हमें और भी अधिक फैलाना है और इसके द्वारा हमें अनेकों के जीवनदीपक में उत्साह का तेल भरने का मगल कार्य करना है । यदि इस कार्य में आप सद्भागी बनना चाहते हों, तो हमने एक योजना बनायी है ।

रु. ११,००० का दान देकर आप रत्नत्रयी ट्रस्ट में 'श्रुतप्रेरक' के रुप में शामिल हो सकते हैं और रु. ५,००० का दान देकर आप 'श्रुतप्रेमी' बन सकते हैं । सहयोग आपका व उत्साह में वृद्धि हमारी ।

(चेक, ड्राफ्ट अथवा रोकडे निम्नलिखित पते पर भेजियेगा ।)

रत्नत्रयी ट्रस्ट
कल्पेश वि. शाह
C/o आर अशोककुमार एण्ड क
८६, अजता कॉमर्शियल सेन्टर,
आश्रम रोड, इन्कम टेक्स के पास,
अहमदाबाद - ३८० ०१४
फोन ऑ ७५४०२९७
घर ६७४५३५२

रत्नत्रयी ट्रस्ट
प्रवीणकुमार दोशी
२५८, गांधी गली,
स्वदेशी मार्केट,
कालबादेवी रोड,
मुंबई - ४०० ००२
फोन . २०६०८२६
(दुपहर में १२ से ६)